सूक्ति सञ्चयन

सूक्ति संचयन

बीकानेर

संकलनकर्ता

हर्षचन्द्र

भूमिका

आचार्य काका कालेलकर

पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
पूर्वोदय प्रकाशन
८ नेताजी सुभाष मार्ग
दिल्ली-६

●

प्रथम संस्करण १९६४

●

मूल्य तीन रुपये

●

मुद्रक
प्रवीन इलेक्ट्रिक प्रेस
८००/१२ सब्जीमंडी
दिल्ली।

भूमिका

किसी बन्द कमरे की बासी हवा से निकल कर खुली हवा में आते जो प्रसन्नता होती है वही आह्लाद हम जैनेन्द्रजी के वचन पढ़कर पाते हैं। बहुत से लेखक, उनकी वाणी चाहे जितनी रोचक क्यों न हो ओढ़े हुए विचार ही व्यक्त करते हैं। फिर वे विचार अपने देश के परम्परागत हों या किसी पश्चिमी गुरु के सिखाये हुये हों। हमारी बगावत भी निजी अनुभव से पैदा हुई कम दिखती है अन्य देशों के बागी विचारकों के विचार अथवा उद्गार अपनी भाषा में लाकर ही हम अपने को मौलिक और बहादुर समझ लेते हैं। ऐसे लोगों के वचनों का गुंजन कानों को अखरता है। किंतु जैनेन्द्रजी मौलिक विचारक हैं। पूर्व और पश्चिम का अध्ययन जरूर उन्होंने किया है अंग्रेजी साहित्य का और उसके शैली का प्रभाव भी उन पर काफी है। पर जैनेन्द्रजी की शैली उनके चिन्तन में से पैदा हुई उनकी निजी शैली है। कभी-कभी मेरे जैसों को वह अखरती भी है। लेकिन विचारों की मौलिकता

के कारण और शैली की चिन्तनशीलता के कारण जैनेन्द्रजी को पढ़ते अथवा सुनते हमेशा आनन्द आता है। और वे क्या कहना चाहते हैं ठीक समझने के लिए मन उत्सुक भी बनता है।

जैनेन्द्रजी का विशाल साहित्य आद्योपान्त पढ़ने का अवसर मुझे नहीं मिला है। लेकिन अभी अभी उनका ग्रन्थ देखा समय और हम, तब जैनेन्द्रजी के चिन्तन का सार अथवा मक्खन पाने जितना सन्तोष हुआ और विश्वास हो गया कि जैनेन्द्रजी एक मौलिक चिन्तक और विचारक हैं। उन्होंने जीवन के सब क्षेत्रों का गहरा परिचय पाया है और हरएक क्षेत्र में उन्हें समाज को कुछ देना भी है।

नया विचार हर कोई कबूल करेगा ही ऐसी अपेक्षा थी जैनेन्द्र जी भी नहीं रखते होंगे। नये ढंग से सोचने के लिये पाठक तैयार हो गये तो जैनेन्द्रजी का प्रयत्न सफल हुआ। वे कहेंगे अजी स्वतन्त्र रूप से और मौलिक ढंग से सोचने के लिये तैयार तो होइए फिर सोचते-सोचते अगर कई पुराने निर्णय पर आप आ पहुंचे तो भी मुझे हर्जा नहीं। फिर वह विचार आप का निजी सोचा हुआ होगा, ओढ़ा हुआ नहीं। उस विचार के पीछे आप अपना व्यक्तित्व लगाकर खड़े रहेंगे इतना मेरे लिये बस है। जैनेन्द्रजी का विश्वास है कि नये ढंग से और अनुभव के बल पर सोचने के लिए जब हमारे लोग तैयार होंगे तब उनके विचारों में प्रथम प्राण प्रकट होगा और बाद में पारमार्थिकता।

इस ढंग से सोचते-सोचते जैनेन्द्रजी जिस नतीजे पर पहुंचे हैं अथवा विचार के जिस ढंग को उन्होंने अपनाया है, उस के

अपने उपन्यासों म, निबन्धो और सम्भाषणो म भी कलात्मक ढग से व्यक्त करते हैं। इसी म उनके साहित्य की ताजगी है। और यही उनका आकर्षण है।

प्रस्तुत पुस्तक जैनेन्द्रजी के वाङ्मय से चुनी हुई उनकी सूक्तियो का सग्रह अथवा सचयन है। इसमें का हरएक वचन जनेन्द्रजी का होते हुए भी, मैं कहूगा यह पुस्तक जनेन्द्रजी की नही है। सचयनकार उनके शिष्य की है।

मेरा इद अभिप्राय है कि वचनों का सग्रह एक मौलिक चीज बनती है जिसके पीछे केवल मूल ग्रथकार का ही नही किन्तु सचयनकार का व्यक्तित्व प्रकट होता है। आप किसी जगल म घूमत घूमते वनस्पति का निरीक्षण कीजिये वहा वनदेवी स्वय स्वच्छन्द विहार करती आपको दर्शन देगी आप से बातें भी करेगी आप अगर जीवन रसिक और अनुभव समृद्ध हगे तो वनदेवी प्रसन्न होकर अभ्यर्थना भी करगी। किंतु प्राकृतिक वन शोभा को छोडकर अगर आप किसी मनुष्य निर्मित उपवन अथवा उद्यान म गये तो आपको वनस्पति के दर्शन का आनन्द तो मिलगा लेकिन वहा वनदेवी की आरण्यक सस्कृति नही मिलेगी। उद्यान म आप का आतिथ्य वनदेवी की ओर से नही होगा किन्तु उद्यान की रचना करने वाले रसिक मानव का होगा। आप अभिनन्दन करेंगे तो उस प्रकृति माता का नहीं किन्तु उद्यान के सयोजक का फिर चाहे वह मालिक हो या माली इससे भी आगे बगीचे म न जाते हुए अगर आपने माली का बनाया हुआ गुलदस्ता हाथ में ले लिया तो उसमें प्रधान उप

स्थिति होगी पौधों पर से फूल तोड़ने वाले और उनकी पसंदगी और रचना करने वाले मालाकार की।

इसलिये कहता हूं कि संचयन की खूबी उसकी जवाबदारी और उसका श्रेय मूल ग्रन्थकार का नहीं वचनकारका नहीं, किंतु संचयन और रचना करने वाले रसिक मालाकार का ही होगा।

इसमें भी कुछ अपवाद होते हैं। चन्द प्रतिभाशाली लेखक-बन्धु अपने भक्तों को और चाहकों को स्वाक्षरी (Autograph) देते समय स्वयं ही सर्वांग सुन्दर वचन तैयार करते हैं। रवीन्द्रनाथ ने जापान के कला रसिकों के लिये ऐसे सुन्दर वचन उनके कलात्मक पत्रों पर लिख दिये। लिबनान के महाकवि खलील जिब्रान ने इसी तरह सूक्त वचन बना-बनाकर प्रेमियों को दे दिये। हमारे संस्कृत के कवि सुभाषित तैयार करने में बड़े ही पटु थे। दिल्ली दरबार में ही संस्कृत की धाक जमानेवाले जगन्नाथ पण्डित ने भी अगणित सुभाषित हवा में छोड़ दिये। ऐसे स्वयं सुभाषितों की बात अलग है और किसी ग्रन्थकार के ग्रन्थों में से वाक्यों को चुनना और सूक्ति के तौर पर समाज के सामने पेश कर देना अलग बात है। उपन्यास, कथा, कहानी, इतिहास, नाटक, निबन्ध, पत्र, समाचार और स्वाक्षरी तरह-तरह के साहित्य में से हम वचन ढूंढ सकते हैं। कविता में से सुभाषितों को एकत्र करना कोई बड़ी बात नहीं है। गद्य में से सुभाषितों को पसन्द करना यही तो बड़ी कला है। यह ही मालाकार का सच्चा जिगर है। गद्यवनचार सागर में गोता मारना है। हम तो कहेंगे कि सूक्त उपकार ऐसा वचन देखकर प्रसन्न हो तो क्या संग्रह कर्ता का

भा

कृतज्ञ हो जायगा ।

मैं तो मानता हूं कि इस तरह वचनों को संदर्भ में से निकाल कर किसी गुलदस्ते में बिठाते समय उन वचनों में थोड़ा कुछ परिवर्तन करने की इजाजत संग्रहकार को होनी चाहिये। वह है तो केवल संग्रहकार, लेकिन उसका रचना कौशल अगर सफल हुआ तो वह एक नव निर्मिती ही हो सकती है। (थोड़ा विषयान्तर करके मैं कहूंगा कि ऐसे वचन संग्रह को अगर किसी साहित्य परिषद की ओर से इनाम या पुरस्कार मिला तो आधे से ज्यादा हिस्सा संग्रह रचनाकार को मिलना चाहिये। मुझे पूरा विश्वास है कि ग्रंथकार ऐसे बटवारे के लिये तुरन्त और सहज राजी होगा।)

प्रतुस्त सूक्ति-सचयन में संग्रहकर्ता ने प्रकरण विभाग अच्छे किये हैं। जैनेन्द्रजी की प्रतिभा जिन जिन क्षेत्रों में प्रकट हुई उनको यहां स्थान मिला है। इन मे भी १–शिक्षा साहित्य, २–काम प्रेम और सौन्दर्य ३–आदर्श धर्म इन तीन क्षेत्रों में जैनेन्द्रजी की प्रतिभा कुंठारहित स्वयर विहार करती आयी है। इसलिये ये तीन प्रकरण विशेष आनन्द देते हैं। व्यक्तित्व और समाज वाला प्रकरण भी खूब नयी-नयी दृष्टि देकर पाठक को चिन्तन में डुबा देता है।

यहां एक वस्तु ध्यान में रखनी चाहिये।

सूक्तियां कोई दार्शनिक सिद्धांत नही होती। सूक्तियां लेखक के अनुभव को, अनुमान को चिन्तन और कल्पना को चमत्कृति जनक शब्दों और रूपों में व्यक्त करती है। सूक्ति जो विचार

स्थिति होगी पौधों पर से फूल तोड़ने वाले और उनकी पसंदगी और रचना करने वाले मालाकार की।

इसलिये कहता हूँ कि संचयन की खूबी उसकी जवाबदारी और उसका श्रेय मूल ग्रन्थकार का नहीं, वचनकारका नहीं किंतु संचयन और रचना करने वाले रसिक मालाकार का ही होगा।

इसमें भी कुछ अपवाद होते हैं चन्द प्रतिभाशाली लेखक-बन्धु अपने भक्तों को और चाहकों को स्वाक्षरी (Autograph) देते समय स्वयं ही सर्वांग सुन्दर वचन तैयार करते हैं। रवीन्द्रनाथ ने जापान के कला रसिकों के लिये ऐसे सुन्दर वचन उनके कलात्मक पत्रों पर लिख दिये। लिबनान के महाकवि खलील जिब्रान ने इसी तरह मुक्त वचन बना-बनाकर अपने मित्रों को दे दिये। हमारे संस्कृत के कवि सुभाषित तैयार करने में बड़े ही पटु थे। दिल्ली दरबार में ही संस्कृत की धाक जमानेवाले जगन्नाथ पण्डित ने भी असंख्य सुभाषित हवा में छोड़ दिये। ऐसे स्वयं सुभाषितों की बात अलग है और किसी गद्यस्वामी के ग्रन्थों में से वाक्यों को चुनना और सूक्ति के तौर पर समाज के सामने धर देना अलग बात है। उपन्यास, कथा कहानी इतिहास नाटक, निबंध पत्र सम्भाषण और डायरी तरह-तरहके साहित्य में से हम वचन ढूंढ सकते हैं। कविता में से सुभाषितों को एकत्र करना कोई बड़ी बात नहीं है। गद्य में से सुभाषितों को पसन्द करना यही एक बड़ी कला है। गद्य ही मालाकार का सच्चा निकष है। संचयनकार गागर में सागर सा भरता है। हम तो कहेंगे कि मूल ग्रन्थकार ऐसा चयन देखकर प्रसन्न तो क्या संग्रह कर्ता का

कृतज्ञ हो जायगा।

मैं तो मानता हूँ कि इस तरह वचनों को सन्दर्भ में से निकाल कर किसी गुलदस्ते में बिठाते समय उन वचनों में थोड़ा कुछ परिवर्तन करने की इजाजत संग्रहकार को होनी चाहिये। वह है तो केवल संग्रहकार, लेकिन उसका रचना कौशल अगर सफल हुआ तो वह एक नव निर्मिती ही हो सकती है। (थोड़ा विपर्यास्त करके मैं कहूंगा कि ऐसे वचन संग्रह को अगर किसी साहित्य परिषद की ओर से इनाम या पुरस्कार मिला तो आधे से ज्यादा हिस्सा संग्रह रचनाकार को मिलना चाहिये। मुझे पूरा विश्वास है कि ग्रन्थकार ऐसे बटवारे के लिये तुरन्त और सहज राजी होगा।)

प्रस्तुत सूक्ति-सचयन में संग्रहकर्ता ने प्रकरण विभाग अच्छे किये हैं। जैनेन्द्रजी की प्रतिभा जिन जिन क्षेत्रों में प्रकट हुई उनको यहाँ स्थान मिला है। इन में भी १—शिक्षा साहित्य २—काम प्रेम और सौन्दर्य ३—मादर्श धर्म इन तीन क्षेत्रों में जैनेन्द्रजी की प्रतिभा कुंठारहित स्वैर विहार करती आयी है। इसलिये ये तीन प्रकरण विशेष आनन्द देते हैं। व्यक्तित्व और समाज वाला प्रकरण भी खूब नयी-नयी दृष्टि देकर पाठक को चिन्तन में डुबो देता है।

यहाँ एक वस्तु ध्यान में रखनी चाहिये।

सूक्तियाँ कोई दार्शनिक सिद्धांत नहीं होती। सूक्तियाँ लेखक के अनुभव को, अनुमान को चिन्तन और कल्पना को चमत्कृति जनक शब्दों और रूपों में व्यक्त करती हैं। सूक्ति जो विचार

व्यक्त करती है वह एकांगी रहा तो कोई हर्जा नहीं तर्क की कसौटी पर टिक न सका तो भी क्षति नहीं है। सूक्ति मार्मिक (Telling) होनी चाहिए। चमत्कृति-जनक (Exciting) होनी चाहिए। और विचार प्रेरक (Thought Provoking) तो होनी ही चाहिए। यह हो गयी सूक्ति के अन्दर के माल की बात। सूक्ति का आत्मा उसके कलेवर में होता है। उसकी भाषा निरस या रिवाजी (Tame) हो तो नहीं चलेगा। उसका अपना नखरा तो होना ही चाहिए और सूक्ति उसके सन्दर्भ से उठाकर अलग रखी तो भी उसकी वक्तृता कम होनी नहीं चाहिये।

महाराष्ट्र के महाकवि मोरोपन्त ने सूक्ति सुभाषित या सद्वाक्य का वर्णन करते हुए कहा है।

बह्वर्थ जनमनोहर अल्पाक्षर मधुर सत्य बोलावे।
अया सद्वाक्य-श्रवणें आर्यांचें चित्त शिर हि डोलावें॥

सद्वाक्य थोड़े शब्दों में बहुत अर्थ व्यक्त करने वाला जन मनोहर मधुर और सत्य हो। जिसे सुनते ही श्रोता लोगों का हृदय भी हिल उठे। और तारीफ करने के लिए सिर भी डोले।

और सूक्ति आकार प्रकार में टकसाल के सिक्के जैसी होनी चाहिए। केवल सोने का टुकड़ा काम नहीं आयगा। मैं तो कहूँगा सूक्ति पहलुदार रत्न की जैसी चमकीली हो तभी वह सारा के कण्ठ में शोभा देती है और दीर्घ काल तक चलन में रहती है।

पाठक देखेंगे कि इस सूक्ति संचयन में अनेकानेक वचन रत्न हैं। जिसके लिए जैनेन्द्रजी और संग्रहकार दोनों हमारे धन्यवाद के अधिकारी हैं।

२४–१२–६४

—काका कालेलकर

अपनी ओर से

सूक्ति किरण के समान है। सूक्तियों में सचेतन अनुभव, गहन चिन्तन और उपयुक्त कल्पनाएं चमत्कृति जनक शब्दों में उतरी रहती हैं। यही कारण है सूक्तियां संगी-साथी के रूप में कंटकाकीर्ण जीवन-पथ पर यात्री का न केवल साथ देती हैं अपितु प्रकाश और बल भी देती हैं।

पढ़ने की रुचि है पढ़ते हुए चयन करते जाने की प्रवृत्ति भी। इस तरह स्वतः कुछ अनौपचारिक संकलन-से बने। कुछ साथियों के अतिरिक्त उनसे स्वयं मुझको भी समय-समय पर प्रकाश व प्रेरणा मिलती रही है। प्रस्तुत सूक्ति संचयन भी मात्र स्वानन्द और स्वरुचि प्रसूत ही है।

आदरणीय बाबूजी का वाङ्मय पढ़ते हुए दादा धर्माधिकारी के इस कथन की 'उनकी (जैनेन्द्रजी की) वाग् वैजयन्ती के सारे मौक्तिक कौस्तुभ ही हैं शायद ही कोई अतिरिक्त या व्यर्थ शब्द होता है। तीव्र प्रतीति होती रही। अवश्य कौस्तुभ

मुक्ताओं में से मणिमाला गूथना सरल नहीं लगा। इन प्रस्तुत सकलित मुक्ताओं के प्रति प्रचुर आकर्षण रहते हुए भी अनगिनत शेष रत्नों के प्रति चाह तीव्रतर ही बनी हुई है। आशा है इन सूक्तियों से उद्बुद्ध पाठकों की रुचि जैनेन्द्र-साहित्य के विस्तीर्ण सागर तल से और भी मनोज्ञ मोती चुनने को बढ़ेगी।

माननीय काका साहब का बहुत-बहुत आभारी [illegible] जिन्होंने स्वल्पतर समय में अत्यन्त सचेतन वृत्ति से भूमिका भिजवाने का अनुग्रह किया।

—हर्षचन्द्र
२ १ ६५

क्रम



मुक्ताओं में से मणिमाला गूथना सरल नहीं लगा। इन प्रस्तुत सकलित मुक्ताओं के प्रति प्रचुर आकर्षण रहते हुए भी अनगिनत शेष रत्नों के प्रति चाह तीव्रतर ही बनी हुई है। आशा है इन सूक्तियों से उद्बुद्ध पाठकों की रुचि जैनेन्द्र-साहित्य के विस्तीर्ण सागर तल से और भी मनोज्ञ मोती चुनने को बढ़ेगी।

माननीय काका साहब का बहुत-बहुत आभारी हू जिन्होंने स्वल्पतर समय मे अत्यन्त सचेतन वृत्ति से भूमिका भिजवाने का अनुग्रह किया।

—हर्षचन्द्र
२ १ ६५

क्रम



युद्ध : अहिंसा

अहिंसा का मतलव इतना ही नही है कि हम किसी का बुरा नही चाहेंगे और नही करेंगे। नही वल्कि हर किसी का भला सोचगे और वह भला करने के लिये आगे बढ़ेगे।

–२–

हिंसा नही करता इसका मतलव हैं कि प्रेम करता है। कम-हीनता झूठी अहिंसा का लक्षण है। जव कम नही होगा तव हिंसा ही कहां मे हागी ? ऐसी धारणा अहिंसा नही निर्जीवता पदा करती है। जसे अपने को मार लेना मुक्त हो जाना नही है, वसे ही कम से वचना हिंसा से बचना नही है।

–३–

मल और एकता म विश्वास रखने वाले अपनी जान को वसी ही सस्ती समझ ल जसे कि हिंसा म विश्वाम रखने वाले दूसरे की जान को समझते है। वे अपनी जान देने को तयार हो जायें जसे कि हिंसा वाला की सन्नद्ध फौजें जान लेन को तयार रहती हैं।

-४-

अ निश्चय ही यही सूचक है मात्र है। हिंसा का अभाव अहिंसा नहीं है और न वस्तु का अभाव अपरिग्रह है। ऐसा हो तो धर्म अभावात्मक हो जाय। अ अभाव का नहीं भावों की असमर्थता का द्योतक है।

-५-

हिंसक युद्ध की प्रेरणा एक गहरे हीनाभाव म स आती है। दूसरे शब्दों म उसकी जड म आतंक या भय होता है। इसीस फल म शेखी और उद्दण्डता दर्शन म आती है।

-६-

युद्धकाल म सबसे आवश्यक तत्व है भय। भय के लिए धरती ईर्ष्या और घृणा भी चाहिये। इस सबक संयोग बिना शत्रु स लड़ाई न होगी।

-७-

निश्चय ही सामने वाले को मार गिराने की स्पर्धा जतलाती है कि आदमी न नशा किया है। नशा टिकन वाली चीज नहीं है। उस एक दिन गिरना है।

घोर स घोर हिंसक कर्म में भी कोई अहिंसा की भावना न हो तो वह हो तक नही सकता। खूंखार जानवर अपने शिकार को मारता है, लेकिन वही अपने बच्चे को प्यार करता है। मैं कहता हू कि वह मारता है तो उस प्यार को साथक करने के लिए ही शिकार को मारता है।

-९-

लेकिन उन युद्धो के बावजूद भी प्रत्युत उनके द्वारा ही वह पहचानता चला गया कि अपने और पराये के बीच की रेखा उसकी अपनी ही खीची हुई है सत्य म वह कही नही है। आज जिसको दुश्मन समझा है उससे किसी प्रकार का समझौता यहाँ तक कि मेल हुये विना स्वय को ही चन नही मिलन वाला है। युद्धो की भावना म मेल की आवश्यकता प्रकट होती गई है और आपसी झगडो के बीच म स मानव-जाति अधिक स अधिक सम्मिलित होती चली आया है।

-१०-

हम सबकी अपनी अपनी शान्तिया की चिन्ता ही युद्ध की सामग्री और अवसर बनती है।

-११-

शान्ति का विवाह जानती हो किससे होता है ? युद्ध से होता है। शान्ति बिचारी युद्ध की ही पत्नि है। सामान्य नहीं धर्म-पत्नि। पत्नित्व पुराना हो जाता है तो स्वयंवर के समारोह का फिर ठाठ होता है।

-१२-

व्यक्तिगत हिंसा में वासना की तीव्रता होती है। स्टेट की हिंसा में वैसी तीव्रता नहीं होती फिर स्टेट की हिंसा खुली हुई है। उसके साथ छिपाव का वातावरण कम होता है, फिर जहाँ स्टेट मन्द है उसके साथ कम बहुत हिंसा गर्भित है ही। कहा जा सकता है कि वह बहुत नैमित्तिक है सकल्पी उतनी नहीं।

-१३-

मैं तो मानता हूं कि व्यक्तिगत हिंसा अब बहुत ही कम हो गई है यानि वह लोगों की तबियत से अधिकाधिक हटती जा रही है। हां, सरकारी हिंसा का अभी भी फैशन है। राष्ट्र सहते हुए शरमाते नहीं बल्कि गर्व मानते है। लेकिन यह भी क्या अपने आप में उन्नति नहीं है कि व्यक्तिगत मामलों में हिंसा एकदम निकृष्ट समझी जाती है।

लडाई लडने वालो मे यही दो पक्ष हैं। एक स्वार्थ रक्षा मे लडते हैं और दूसरे स्वार्थ विस्तार मे लडते है। इन वृत्तियो को जगत मे तरह-तरह के नाम प्राप्त हैं—न्याय, कर्त्तव्य, धर्म इत्यादि।

–१५–

यह सर्वथा असत्य है कि हिंसा से हिंसा शान्त हो सकती है।

–१६–

दुनिया में सब हिंसा बचाव की हिंसा है। आक्रमण की हिंसा मे गहरे जाकर देखें तो पता चलेगा कि वहा भी अपनापन ही मुख्य है। दूसरे को सताना मुख्य नही है। स्वत्वाभाव की रक्षा या प्रतिष्ठा की कल्पना मे से ही परहत्या की यानि आक्रमण की तयारी आती है।

–१७–

सम्पूर्णता को परमात्मा कहो। उसका अज्ञेय भाग सत्य है। प्राप्त सत्य अहिंसा है। मानव चूंकि अपूर्ण है इससे उसका समाजिक धर्म अहिंसा ही है।

-१८-

जसे रात को चाँद का वस उजला भाग दीखता है शेप पिछला भाग उसका नही दिखाई देता उसी तरह कहना चाहिए कि जो भाग सत्य का हमारे सम्मुख है वह अहिंसा है। वह भाग अगर उजला है तो किसी अपर ज्योति से ही है। लेकिन फिर भी वह प्रकाशोदगम (सत्य) स्वयम् हमारे लिए कुछ अज्ञात और प्रार्थनीय ही है। और जो उसका पहलू आचरणीय रूप म सम्मुख है वही अहिंसा है।

-१९-

शान्ति नकारात्मक ही है। हम नकार का गलत समझते हैं। पर जब हम नकार होते हैं तब जो ह वह मिट नही जाता बल्कि वह खुला अवसर पाता ह।

-२०-

जो अहिंसा की ध्वजा उद्घोष के साथ फहराता है वह अहिंसा की दुकान चलाता है वह अहिंसक नही है।

-२१-

व्यावहारिक सच्चाई एक है वह अटूट है निरपवाद है। वही अहिंसा है।

-२२-

क्रोध शान्ति की शक्ति के सामने अपदार्थ है और अहिंसा की सात्विक शक्ति के आगे सदा ही पराजित है।

-२३-

अपने असंयम से दूसरे का दमन आता है।

-२४-

युद्ध सत्य के लिए ही किया जाता है। लडने वाले दोनों अपनी अपनी तरफ हक्क न देखें तो वे लडें किस बल पर? लडाई इस अधिकार के सिवा क्या है कि हम दूसरे सकडों-हजारों को मौत के घाट उतार कर सत्य और न्याय का रास्ता साफ करते हैं। युद्ध को प्रभुसत्ता के अधिकार इसलिए प्रत्येक देश अपने हाथ में रखता है। जिसे सरकार कहते हैं वह उसी अधिकार को अमल में लाने के यन्त्र के सिवा क्या है?

-२५-

अहिंसा से मोक्ष के बजाय अहिंसा में मोक्ष है।

-१८-

जसे रात को चाँद का बस उजला भाग दीखता है शेष पिछला भाग उसका नही दिखाई देता उसी तरह कहना चाहिए कि जो भाग सत्य का हमारे सम्मुख है वह अहिंसा है। वह भाग अगर उजला है तो किसी अपर ज्योति से ही है। लेकिन फिर भी वह प्रकाशोदगम (सत्य) स्वयम् हमारे लिए कुछ अज्ञात और प्रार्थनीय ही है। और जो उसका पहलू आचरणीय रूप म सम्मुख है वही अहिंसा है।

-१९-

शान्ति नकारात्मक ही है। हम नकार को गलत समझते हैं। पर जब हम नकार होते हैं तब जो ह वह मिट नही जाता बल्कि वह खुला अवसर पाता ह।

-२०-

जो अहिंसा की ध्वजा उत्ताप के साथ फहराता है वह अहिंसा की दुकान चलाता है वह अहिंसक नही है।

-२१-

व्यावहारिक सच्चाई एक है वह अटूट है निरपवाद है। वही अहिंसा है।

२२

क्रोध शान्ति की शक्ति के सामने अपदार्थ है और अहिंसा की सात्विक शक्ति के आगे सदा ही पराजित है।

-२३-

अपने असयम से दूसरे का दमन आता है।

-२४-

युद्ध सत्य के लिए ही किया जाता है। पक्ष और दोनों अपनी अपनी तरफ हक्क न देखें तो वे युद्ध किस बल पर? लड़ाई इस अधिकार के सिवा क्या है कि हम दूसरे सैकड़ा-हजारों को मौत के घाट उतार कर अपने न्याय का रास्ता साफ करते हैं। युद्ध की प्रक्रिया का अधिकार इसलिए प्रत्येक देश अपने हाथ में रखता है। जिसे सरकार कहते हैं वह क्या अधिकार को चलाने के यन्त्र के सिवा क्या है?

-२५-

अहिंसा से मार के बजाय अहिंसा में [illegible]।

–२६–

शान्ति वह जो टूटे नही जो दूसरे पर निर्भर होकर न रहे, न किसी बाहरी घटना पर न व्यक्ति पर जो खुद मे पूरी हो और सवथा यथाथ हो।

–२७–

हिंसा की जीत सगठन म देखी जाती ह । अहिंसा की हार इसी म होती रही ह कि वह व्यक्तिगत दायरे म अपना सतोष और मोक्ष खोजती है ।

–२८–

जसे साधु की पहचान उसकी साधुता हो सकती ह न कि वेष । वसे ही अहिंसा की पहचान आचरण से होगी न कि कहने से ।

–२९–

मेरे विचार में शान्ति अपनी मर्यादाओ की स्वीकृति है। प्राथना म हम अपनी सीमाओ को कृतज्ञताभाव स स्वीकार करते हैं। प्राथना म हम अपन को अण मानते है इसी कारण प्राथना से बल मिलता है।

-३ -

स्वेच्छा पूर्वक परहित मे दुख उठाने का रास्ता ही सुख देता है।

-३१-

गाय की हत्या पर जुगुप्सा हो सकती है पर चमडे के व्यापार मे करोडो की कमाई ठीक लग आती है। हत्या से जी घबराता है लेकिन युद्ध वाली हिंसा या उत्पादन और पूजी के अमित केन्द्रीकरण से होने वाली व्यापक और सूक्ष्म हिंसा हमको प्रिय लग सकती है। यह सब बृहत्ता की माया है। स्थूल आँख गुण तक नही पहुँचती, परिणाम पर भटकती है।

-३२-

भय की भावनाओ पर धर्मों का प्रारम्भ हुआ यह बात झूठ नहीं है।

-३३-

डर से जो होता है वह सयम नही है। सस्कृति सयम का फल है। दमन हिंसा को निमन्त्रण है।

जो चीटियो को चीनी खिलाता है और पडोसी की खब नही रखता वह अहिंसक नही है।

-३५-

पशु की पशुता म पाप नहीं ह पाप मनुष्य की पशुत में ह।

-३६-

मित्र को मित्रता देने म क्या वडाई या क्या पराक्रम ? शत्र को मित्रता से जीतना ह। शत्रु का सच्चा नाश इसी म ह क्योकि शत्रुता के बीज मिटते है और शत्रु सदा क लिए मित्र वन जात हैं।

-३७-

मरन क डर स ही मारने का माह वनता ह।

-३८-

विरात्र रोष म से उपजना ह। क्द्ध ह उसे अवकाश और

उपयोग मिले तो वही ऋण धन हो जाए।

-३९-

आजकल जबदस्त का सब कुछ है। अदालत भी उसकी है, दोस्त भी उसके हैं पैसा भी उसका है। ये सब आपस में एक दूसरे के बनकर रहते हैं।

-४०-

असल में डर ही हो सकता है जो आपके लिए किसी को दुश्मन बनाए। उस डर में से ही यह शक्ति आती है कि आप उसको दुश्मन मानकर मारें। कहीं यदि आप निडर हुए तो खटका है कि शत्रु शत्रु ही न रह जाए आदमी दीख आए। तब उसको मारने लायक जोश ही कहाँ रह जाएगा और वही नामर्दी समझी जाएगी।

-४१-

दुख क्लेश का सम्बन्ध मानसिकता से विशेष है।

-४२-

करुणा हद लांघकर क्रोध हो जाती है।

-४३-

दु ख सहना वीरो का काम ह । अपन दुख मे सज्जन पुरुष किसी को कष्ट नहीं देते और उस शान्ति स सहते हैं ।

-४४-

जहां परस्पर सयोग किसी सास्कृतिक भावना को सामने रखकर नही होता, वहां जल्दी या देर मे वह वर का कारण हो जाता ह ।

-४५-

भय सहार का हेतु ह । निभय रहन से सहार की आव श्यकता नि शेष होगी ।

-४६-

सूक्ष्मे सूक्ष्म यह विकास की तात्विक गति ह । हिंसा से अहिंसा यह विकास की सामाजिक अथवा मानवीय गति ह ।



राज्य : नीति

-४७-

राज्य शक्ति नहीं शक्ति के उदय में बाधा है।

-४८-

शासन कभी अपनी ओर से अपने को समाप्त करने वाला नहीं है। समाज को ही नीचे से अपने को शासन मुक्त करते हुए उठना होगा।

-४९-

स्वतन्त्रता का सही उपयोग स्वतन्त्रता देने में अधिक है लेने में नहीं।

-५०-

आदमी पद में उतना भला नहीं कर सकता। आत्म से हटकर ही पद पर बैठा जाता है। वहाँ आत्म साक्षात्कार का अवसर नहीं न पूरे आत्मविसर्जन का। समझौता करना पड़ता है और उस कर्त्तव्य को जो आत्मिक नहीं है छोड़कर चलना पड़ता है।

-५१-

राज्य अच्छा वह जो राज्य कम से कम करे।

-५२-

शासक श्रमिक नही रहता। श्रम करने और श्रमिक का ही धन रखने वाला औसत आदमी और उस श्रम की व्यवस्था और उसके फल का व्यापार करने वाला व्यवसायी या व्यवस्थापक इन दोनो के हितो म अन्तर होता है।

-५३-

जिसने जीवन का सत्य की शोध के लिए ही समझा है वह गवर्नर होना कैसे स्वीकार कर सकता है।

-५४-

डिक्टेटरशिप के माने ही है एक केन्द्र म सिमटी हुई भौतिक ताकत।

-५५-

स्नेही ही दूर रह सकते हैं। विरोधी और विद्रोही को सदा

पास जान का अवसर है, यह शासन की अहिंसक नीति है।

–५६–

दूसरे की पराजय मे एक की सफलता और उसको पराधीन रखने म अपनी स्वाधीनता है ?

–५ –

वर को मिटाने क लिए वरी को मान दने से शुरू करना होगा। मान ऊपरी नही वल्कि हार्दिक। ऊपर से तो वल्कि असहयोग और सत्याग्रह भी चल सकता है।

–५८–

मौत की सजा समाज के हक म उसकी हार का प्रमाण है वह दीवालियापन है।

–५६–

वाह्य शासन तभी तक शासन रूप मे टिक सकता है, जब तक अन्त शासन म कुछ त्रुटि है। जब भीतर से जीवन स्वावलम्बी हो जायेगा तब वाह्यावलम्बन अनावश्यक होकर स्वयम् बिखर रहेगा। अण्डे का खोल तभी तक है जब तक भीतर जीवन पक नहीं पाया है शासक समर्थ

वना कि खोल टूट ही जायगा। क्या हम यह कहें कि यह खोल वच्चे वनने म वाधक है ?

–६०–

स्वाधीन चेता व्यक्ति स्वच्छा पूवक सेवा करता है और विवक पूवक कम करता है।

–६१–

मयादाम्रा की निश्चिति के वार म यही तत्व निर्णायक हो सकता है कि एक व्यक्ति की सीमा दूसरा व्यक्ति है। एक समाज का सीमा दूसरा समाज है। वे सीमा अधिकारा का है प्रम व्यवहार की य मामाए नहीं हैं।

–६२–

चुनाव म खडे होने की तरफ प्राम उमकी अधिव लगा होती है जा महत्वाकांक्षी है और महत्वाकाक्षा अनतिक है। इसम आजकल की चुनाव प्रथा नतिकता को बढ़ाती हुई नहीं दखन म आती।

–६ –

नागन का मत्र है भेद डालो और राज करो। जन समाज

म श्र णिया डालकर शासन चलाया जाता है। ऊच और नीच अमीर और गरीब इस तरह के भेद सत्ता के लिये बहुत जरूरी है। क्योंकि उस भेद के कारण सत्ता अनिवाय बनती है। दो लडे तो बीच बचाव का काम हाथ मे लेने तीसरा आ ही जाता है।

-६४-

स्वाधीनता का मतलब अपने अधीन होना-किसी और देश का उसपर आतक न हो। साथ यह भी उसका मतलब होना चाहिये कि किसी अ य देश पर उसे लोभ की अथवा आक्रमण की लालसा न हो। क्योंकि अगर वसी लालसा है तो उतने अश मे उसको स्वस्थ नही कहना होगा। वह पराधीन है-पर की तृष्णा के अधीन।

-६५-

पू जी शासन करती है, श्रम शोषित होता है। एसे विषमता पदा होती है और तरह-तरह की व्याधिया ज म लेती है। समाज म श्रे णिया उपजती हैं, उनमे तनाव होता है और समाज शरीर क फटन की हालत बनी रहती है।

-६६-

जहां तक आम जनता का मानसिक विकास पहुचा है ठीक

उसी तल का बल जिन लोगो म अधिक है, वे उस काल के शासक बन जाते हैं। आज कोई मारने काटने की ताकत के बल पर बडा हो सकता है, यह विश्वसनीय नहीं जान पडता। लेकिन पहल ऐसा हो सकता था।

–६७–

यह सदा के लिए असम्भव है कि सच्चा पुरुष किसी राष्ट्र का शासन प्राप्त अधिनायक हो। राजा बडा नही होता। बडा वह जिसका बडप्पन बढता ही है गिरता कभी नही। मौत के बाद भी वह बढता है। इतिहास उसे चमका ही सकता है धु धला नही कर सकता।

–६८–

शासन व व्यवस्था अपन आप म काम बनता हो तब है जब समाज के अवयवो म सघष व विषमता हो।

–६९–

जानवर वाली आजादी जितने हो अश म आदमी अपने पास से जानबूझ कर खोता जायगा उतन ही अश म शायद असली सच्ची और इन्सानी आजादी उसके पास आती जायगी।

—७०—

नतिकता का अधिष्ठान हृदय है। समाज का हृदय क्या है? कहना चाहिये कि शिक्षक वग, लेखक-वग, ब्राह्मण-वग उस समाज का हृदय है। शासक-वग समाज के बाहु हैं। बाहुबल हृदय बल के वश से बाहर हो तो उस समाज को ज्वरग्रस्त कहना चाहिए।

—७१—

राजनीति नीति प्रधान जब बनेगी तब जान पडेगा कि केन्द्र गुट से और पद से हटकर व्यक्ति म और उसके श्रम म चला आया है। तब धनी वही होगा जो श्रमी हैं। और सत्ता का स्वत्व उसके पास होगा जो निस्व है। गाधीजी से उस प्रकार की राजनीति के चलने की सम्भावना हो आयी थी।

—७२—

शासक म यह तो साफ ही है कि शासित की अपेक्षा बल की अधिकता होगी। अब ज्ञान और बल ये दो चीजें हैं। ज्ञान सक्रिय होने पर प्रबल होता है, निष्क्रिय ज्ञान निबल है। इसलिये यह हो सकता है कि पशुबल की जगह नतिक

उसी तल का बल जिन लोगो म अधिक है, वे उस काल के शासक बन जाते हैं। आज कोई मारने काटने की ताकत के बल पर बडा हो सकता है, यह विश्वसनीय नही जान पडता। लेकिन पहले ऐसा हो सकता था।

–६७–

यह सदा के लिए असम्भव है कि सच्चा पुरुष किसी राष्ट्र का शासन प्राप्त अधिनायक हो। राजा बडा नही होता। बडा वह जिसका बडप्पन बढता ही है गिरता कभी नही। मौत के बाद भी वह बढता है। इतिहास उसे चमका ही सकता है धुंधला नहीं कर सकता।

–६८–

शासन व व्यवस्था अपने आप म काम बनता हो तब है जब समाज के अवयवो म सघर्ष व विषमता हो।

–६९–

जानवर वाली आजादी जितने ही अश म आदमी अपने पास स जानबूझ कर खोता जायगा उतने ही अश म शायद असली सच्ची और इन्सानी आजादी उसके पास आता जायगा।

नतिकता का अधिष्ठान हृदय है। समाज का हृदय क्या है? कहना चाहिये कि शिक्षक वर्ग, लेखक-वर्ग ब्राह्मण-वर्ग उस समाज का हृदय है। शासक-वर्ग समाज में बाहु है। बाहुबल हृदय बल के वश से बाहर हो तो उस समाज को ज्वरग्रस्त कहना चाहिए।

—७१—

राजनीति नीति प्रधान जब बनेगी तब जान पड़ेगा कि केन्द्र गुट से और पद से हटकर व्यक्ति में और उसके श्रम में चला आया है। तब धनी वही होगा जो श्रमी है। और सत्ता का स्वत्व उसके पास होगा जो निस्व है। गांधीजी से उस प्रकार की राजनीति के चलने की सम्भावना हो आयी थी।

—७२—

शासन में यह तो साफ ही है कि शासित की अपेक्षा बल की अधिकता होगी। अब ज्ञान और बल ये दो चीजें हैं। ज्ञान सक्रिय होने पर प्रबल होता है, निष्क्रिय ज्ञान निर्बल है। इसलिये यह हो सकता है कि पशुबल की जगह नतिक

वल के हाथ में शासन हो जाय। पर यह ध्यान रखने की बात है कि नैतिक ज्ञान काफी नहीं है।

–७३–

राजनीति नीति का राज नहीं चाहती। वह तो राज ही चाहती है। राज करने और राज रखने की ही नीति को वह चाहती है पर क्या वह नीति है जो आव राज पर रखें और जिन पर वह राज हो उन पर पाव रखने की सोचे।

–७४–

विश्व की राजनीति के आगे प्रश्न है कि वह राज को प्रधान रखेगी कि नीति को। राज प्रमुख राजनीति तो चल ही रही है और उसका परिणाम भी उजागर है। क्या नीतिप्रधान भी वह कभी बनना आवश्यक और सम्भव समझेगी ?

–७५–

राज्य का बल हृदय का नहीं कानून का है। गुण का नहीं सख्या का है सहानुभूति का नहीं दमन का है उस नियम को देखते हुए राज पुरुष की सस्कृति को नेतृत्व देने की

असमयता अवश्य ही मान लेनी चाहिये।

–७६– ।

तन्त्र केवल मात्र प्रयोग के फल हैं। उनमे सत्यता नही है। सच को घेरने का दावा करके अपने झूठ की ही वे घोषणा करते हैं।

–७७–

राजनीति के लिए मानव नीति को छोड़ना कभी-कभी क्षम्य होने वाला नही है।

–७८–

शासन अनागत के आह्वान मे सदा ही बाधा है। वह स्थिति से बंध जाता है और गति यथा किंचित उससे रुकती ही है।

–७९–

आप अगर समझते हो कि सच्चाई और भलाई के बल पर कोई नेता बनता है तो मुझे क्षमा कीजिये। आपको अभी समझना और बाकी है।

–८०–

जव धम क्म अधिकार अधिक हो जाता है। तव राज्य रक्षा का नही थाम का कारए वनता है।

–८१–

राज्य ने श्रद्धा को तोडा हैं और उसके अभाव से लोगा म अनाथ भाव आया कि उन्ह अपन अधीन ले लिया है।

–८२–

घर शासन शून्य हो तो एक रोज होते-होते विश्व शासन शून्य हो जायगा और यही मोक्ष ह। शासन की जगह वहा होती ह जहा प्रेम की जगह नही। और जव किसो म इतना प्रेम नहा जो घर म फला रह सके तो वह आदमी कसा।

–८३–

शक्ति राज्य का नाम है मानलला अर्थात् कानून शक्ति की मुट्ठि म। तव न्याय को आने म वठा दिया जाता है। राज धम, नाति धम, आदि आदि को भगवद् भजन करन दिया जाता है।

राज धर्म का पहला नियम है कि शासन से न्याय अलग होकर ऊपर होकर रहे। इसकी निरकुश होने की ओर वृत्ति होती है। अधिकार मद है। अधिकार की आदत अधिक अधिकार मागती है। न्याय उस पर अकुश रखे। शासन न्याय के प्रति उत्तरदायी रहे और शासन न्याय की माग और न्याय के हुकम को पूरा करे और उसके नियम मर्यादा म रहे।

-८५-

राजनीति अपनी सत्ता और अपने कम के बारे मे अपने भातर गहर मे पडी इम स्मशान की भूमिका पर से अगर सोचे? सोचे कि यहा का करा धरा चौपट यही सब रह जायगा, मान सम्मान सब बट जायगा, लाग आयेंगे और उसमे आग दिखा जायगे। वहा से साचे तो क्या देश के उसके, हम सबके लिये यह परम शुभ न हो।

-८६-

कानून के डण्डे मे अपराध का कौशल नये-नये आविष्कार भी सूझ ही पाता है, मद और परास्त तनिक नही हो पाता।

-८७-

वास्तव मे न्याय का काम जिलाने का है। न्याय दया के समीप है क्रूरता के उतना नही।

-८८-

शासन यदि वह है जो बाहर मे और ऊपर से आता है तो अनुशासन वह है जो अन्दर स और स्वेच्छा से आता है।

-८९-

मुझे स्पष्ट हो गया कि अगर कभी दुनियाँ एक होगी तो वह सयुक्त राष्ट्र के भवन या जतन म स उतनी नहीं होगी जितनी मानव व्यक्तियो के परस्पर खुल चित के व्यवहार म होगी। व्यक्ति आये-जायेंगे वसे ही जैसे कि हवा। बीच म सशय होगा नहीं और मन को खोजता हुआ मन अनायास ढुलकर उसम आ मिलेगा।

-९०-

क्या लकीर ही नहा है जिससे स्वदेश और विदेश बनते हैं और जिन पर युद्ध होते हैं। लकीर भी केवल नक्शे पर अमल म कहीं नहा।

-९१-

एक काला बाजार है, दूसरा सफेद बाजार। सफेद और काले के बीच की लकीर को देखने चलते हैं तो वह कागजी से गहरी नहीं रहती। सरकार के बीच में आ जाने से सफेद और काले मे भेद पड़ता है। वह जब तक न आये सब सफेद ही है।

-९२-

सरकार से हमे सहकार पर आना है।

-९३-

सख्या म सच्चाई नही ह।

-९४-

टिकने वाला अत म तो वही बल रहेगा जो 'म' का न हो, या कहो 'अनेक' म का हो।

-९५-

अपराध वृत्ति से छुटकारा पाने के लिए यह अधिक सगत

है कि हम उस अपराध को अपराधी के स्थान से देखें न कि जज के स्थान से। तब अपराधी को दण्ड देने के बजाय उस अपराध के मूल को निर्मूल करने की प्रेरणा अधिक होगी।

-९६-

लोग समाज कहते हैं देश कहते हैं। समाज और देश का आरम्भ पड़ोसी से है।

-९७-

झण्डे को सत्य बनाने वाला कपड़ा नहीं है, शहीदों का खून है।

-९८-

यह संख्या और सम्प्रदाय का बल क्या व्यक्तित्व के पक्ष में ग्रसना नहीं है? महिमा का जुटाया हुआ मण्डन अन्दर के अभाव अन्तर की महिमा हीनता का ही तो सूचक कहीं नहीं है? इसमें शायद असाधारण वह है जो ऊपर से सर्वथा साधारण है।



शिक्षा : साहित्य

-९९-

शिक्षा का मतलब है व्यक्ति का समाजोपयोगी विकास।

-१००-

हमारे अधिक जानने का मतलब यही होता है कि अज्ञेय का परिमाण हमारे निकट बढ जाता है।

-१०१-

जानना यहा क्या है? करना जो इतना सामने पडा है। करने से अलग होकर जो जानना है वह न भी जाना गया तो क्या विशेष हानि होने वाली है।

-१०२-

घर ही उत्तम शिक्षालय है। सफल पुरुष पाठशाला मे नही जीवन शाला मे अध्ययन करते हैं।

-१०३-

जो जानता है कि वह जानता है, वही नही जानता है।

शिक्षा साहित्य/४७

ग्राहक के समक्ष ग्रनता की स्वीकृति हो बिगता है।

-१०५-

शब्द की शक्ति हमारी सारी उन्नति का ग्राधार है। भारी मूर्खता होगी कि सदियों की साधना से जो शब्द ऊँचे चढ़े हैं उन्हें हम व्यक्तियों के दोष का उल्लेख कर नीचे खींच लायें।

-१०६-

भस का याज है वहस। जरूर उसकी यही व्युत्पत्ति है। भाषा शास्त्र ग्रौर शब्द विज्ञान की दृष्टि से इसमें किसी प्रकार की शंका का स्थान नही हो सकता। जब तक मैं वहस नही करता मैं भस भी नही हो सकता। भस नही हूँ इसी का ग्रर्थ है कि मैं ग्रकलमन्द हूँ। वहस कर पड़ता हूँ तो स्पष्ट है कि भस की भाँति मेरी ग्रक्ल चरने चली गई है।

-१०८-

प्रतिभा भी थाही वहुत ग्रसामाजिक वस्तु है। इसलिए शायद हर-एक प्रतिभावान मनुष्य को समाज की ग्रवज्ञा प्राप्त होती है।

-१०८-

हम मे पूर्णता होती तो परमात्मा से अभिन्न हम महाशून्य ही न होते ? अपूर्ण है, इसीसे हम हैं। सच्चा ज्ञान सदा इसी अपूर्णता के बोध को हममे गहरा करता है।

-१०९-

अक्ल बडी कि भैंस ?
साहित्य बडा कि राजनीति ?
मैंने कहा कि सच सुनना चाहते हैं तो सुनिये अपनी अक्ल से तो मरते दम तक भैंस क्या हाथी को और किसी को भी बडा नहीं कह सकता। इसलिये नही कि वह अक्ल है बल्कि इसलिये कि वह मेरी है। और मेरी छोड आपकी अक्ल की बात कीजिये तो उससे तो चीटी भी बडी है साहब, चीटी। उसकी साफ वजह यह है कि वह आपकी है।

-११०-

शिक्षा आज इसने हिन्दुस्तान को क्या बना दिया है ? हृदय की सारी विभूति का चूस लेती है, आदमी को दम्भ करना सिखाती है, अपने शब्द जाल मे सच्चाई को ढक लेती है और अपने बडे-बडे कामों को दिखा कर आदमी को उलझा देती है।

-१११-

कम्युनिज्म वह गाधीवाद है जिसम से हत्या करके ईश्वर को अलग कर दिया गया हैं ।

-११२-

वाद का लक्षण ह कि वह प्रतिवाद को विवाद द्वारा खण्डित करें और इस तरह अपने को प्रचलित करे ।

-११३-

मानवता गिर रही ह क्या इसलिये नही कि वादमता बढ़ रही ह ।

-१ ४-

वाद का काम ह प्रतिवाद को विवाद द्वारा खण्डित करना । और इस तरह अपने को चलाना ।

-११५-

उपवास सेसव म तप चाहिय । तप–यानि कायम और ठण्डा जोश ।

-११६-

सरकार आज जनतान्त्रिक है। हिन्द की जनता और इसलिये सरकार भी आज हिन्दी ही रह सकती है। अंग्रेजी रहकर आगे वह चल नहीं सकती। अंग्रेजी पनप नहीं सकती। अंग्रेज विदेश में थे, विदेशी और देश में अतिथि के रूप में अब जो चाहे तो रहे, देश के शासक के रूप में व या शासक भाषा के रूप में अंग्रेजी नहीं रह सकते।

-११७-

कोई साहित्यकार जन्म जो ईच्छा और साधनापूर्वक अकिंचन बने। रोटी भूख की ही ले अथवा स्नेह की ही ल और दुनिया पर अपना कोई दावा या अधिकार न जताये। कमाने के नाम एक पाई कमा सकने के अयोग्य अपने को बनाले।

-११८-

हमारा ज्ञान आपेक्षिक है। वह अपूर्ण है। जगत की विचित्रता उसम कहां समा पाती है? अपने को मानव यव पूरा जान सकता है जानने को शेष तो रह ही जायगा। इसलिये वह सदा घटित होता रहता है जो

हमारे ज्ञान को चौंका देता है ।

-११९-

यदि विद्वान के भीतर सहानुभूति से भरा सा आता हुआ हृदय नहीं है तो वह विद्वत्ता साहित्य की दृष्टि से कुछ बेजान सी चीज है ।

-१२०-

वह भाषा दरिद्र है जो जीवन का साथ देने के बजाय उस पर सवारी कसती है ।

-१२१-

रोटी के बिना हम कई दिन रह लेंगे । हवा के बिना तो क्षणों में ही हमारा काम तमाम हो जायगा । साहित्य उस हवा से सूक्ष्म उससे भी अधिक अनिवार्य है ।

-१२२-

जीवन की सत्योन्मुख स्फूर्ति जब भाषा द्वारा मूर्त और दूसरे को प्राप्त होने योग्य बनती है तब वही साहित्य होता है ।

-१२३-

मार्क्सिज्म स्थिति का व्यक्ति से नही जोडता। उसकी दृष्टि से दोष अपने मे देखने की जरूरत कम हो जाती है और दोषारोपण सामाजिक परिस्थिति मे किया जाने लगता हैं।

-१२४-

मार्क्सिज्म नि सन्देह उस समय प्रचलित कई विचार-धाराओ को अपने में समा लेता ह। वह उनका समन्वय होन क कारण प्रबल हो सका लकिन अत में जाकर उस का आधार वग विभेद ह अभेद नही। इसलिये यथा शीघ्र उसकी अपर्याप्तता उभर कर प्रमाणित हो आनी ह।

-१२५-

लखक के लिखन का उद्देश्य अपने को सब मे बाट दना है

-१२६-

साहित्यकार क मन की ओर से उसक साहित्य पर इस आजीविका के विचार का जिस मात्रा म बोझ पडगा। उसी मात्रा म साहित्य की उत्तमता म क्षति आ जानी चाहिय, एसा मैं समझता हूँ।

-१२७-

हम साहित्य सेवी कम बन सकते हैं ? अच्छी बातों को सोचने और फिर उन अच्छी बातों को लिखने से । अपने को औरों में खाने और फिर दूसरों को अपने में पाने से । प्रेम की साधना से और अहंकार के नाश से ।

-१२८-

मुझे इसमें शंका है कि मार्क्सिज्म समूचे जीवन को छूता है । वह समाज नीति है जीवन नीति नहीं है ।

-१२९-

हिन्दी की एक निश्चित धारा है, निश्चित संस्कार है । इसी प्रकार को उर्दू को एक अपना रंग है और अपनी तरतीब है । जबरदस्ती दोनों का मेल कराने का नतीजा दोनों को अपनी खूबियों से हाथ धोना होगा । और इस तरह जो चीज बनेगी वह भाषा तो होगी नहीं विडम्बना होगी ।

-१३०-

साहित्य सच्चिदानन्द की प्यास और उसका प्रत्यर्पण है ।

-१३१-

बुद्धि मिली है इसीलिए। वह भरमाती है इसीलिए कि आदमी भटके, त्रास पाये और सीखे। इसीलिए बुद्धि जिन्होंने पाई नहीं वे पशु सुख से है। अपने अन्तभू त नियम से तदगत होकर जीते-मरते हैं और व्यर्थ परेशान नहीं होते?

-१३२-

स्नेह की अपनी भाषा होती है।

-१३३-

भाषा पर मैं किसी को रोकना नहीं चाहता हूं। भाषा है माध्यम मन उलझा हो तो भाषा सुलझी कैसे बनेगी?

-१३४-

मानवजाति की इस अनन्त निधि मे जितना कुछ अनुभूति भण्डार लिपिबद्ध है वही साहित्य है। और भी अक्षरांकित रूप मे जो अनुभूति सचय विश्व का होता रहेगा वह होगा साहित्य।

-१३५-

ग्रात्म-चरित अपनी अनुभूतियों का समर्पण है।

-१३६-

लेखन व्यक्ति के अन्तरंग की अभिव्यक्ति है।

-१३७-

बनाने से भाषा के बिगड़ने का अन्देशा है। सोचकर चलने से व्यक्ति का उस पर अहंकार लद जाता है।

-१३८-

प्रतिभा अपने प्रति गहिंग ईमानदारी को कहते हैं।

-१३९-

बड़ा दार्शनिक कच्चा व्यवहारज्ञ होता है।

-१४०-

साहित्यिक रचना वह है जो अपने साथ अपने ही अन्त

की ओर पाठक को बरबस, विस्मित, सभ्रमित, अप्रत्याशित भाव से खीचती ले जाय।

-१४१-

जो भीतर कुण्ठा नही लेता ग्रन्थी नही उपजने देता, वह अवसर पर किसी से किसी प्रकार की वार्ता का आरम्भ कर सकता है।

-१४२-

सरस्वती के फेर म लेखक निधन रहे तो तक स असगत बात नही है। यह निधनता उसकी सवेदना को और पना बनाती है।

-१४३-

प्रश्न में जिज्ञासा है, अभीप्सा है। उसस आदमी बढता और ऊपर को उठता ह किन्तु वही जब सशय बन जाय तब वह खाने लगता ह।

-१४४-

घटना जो जगत मे घटती है वही समय से बधी हानी

-१३५-

आत्म-चरित अपनी अनुभूतियों का समर्पण है।

-१३६-

लेखन व्यक्ति के अन्तरंग की अभिव्यक्ति है।

-१३७-

बनाने से भाषा के बिगड़ने का अन्देशा है। सोचकर चलने से व्यक्ति का उस पर अहंकार लद जाता है।

-१३८-

प्रतिभा अपने प्रति अडिग ईमानदारी को कहते हैं।

-१३९-

बड़ा दार्शनिक अच्छा व्यवहारज्ञ होता है।

-१४०-

साहित्यिक रचना वह है जो अपने साथ अपने ही अन्त

को ओर पाठक को बरबस, विस्मित, सम्भ्रमित, अप्रत्याशित भाव से खींचती ले जाए।

-१४१-

जो भीतर कुण्ठा नहीं लेता ग्रन्थी नहीं उपजने देता, वह अवसर पर किसी से किसी प्रकार की वार्ता का आरम्भ कर सकता है।

-१४२-

सरस्वती के पेर म लेखक निधन रहे तो तक से असगत बात नहीं है। यह निधनता उसकी सवेदना को और घना बनाती है।

-१४३-

प्रश्न म जिज्ञासा है, अभीप्सा है। उससे आदमी बढ़ता और ऊपर को उठता ह किन्तु वही जब सशय बन जाय तब वह खाने लगता ह।

-१४४-

घटना जो जगत म घटती है वही समय से बधी होती

ग्रोर पुरानी पडा करती ह । कहानी की घटना जागतिक ग्रोर मार्मिक न होकर मानसिक होती ह इसलिए वह सनातन बन जाती है । पाठक के मानस पर पढन के साथ साथ घटित होते जाने के कारण वह नित नूतन प्रतीत हो सकता ह ।

-१४५-

कहानी के लिए एक अकेला प्यार बहुत काफी है फिर सारे दूसर बाध नष्ट भी हो जाये तो कोई हानि नही ।

-१४६-

कहानी की सृष्टि बाजार म नही उस निभृत गुहा म ह जहा पीडा अपने लिए स्थान पाकर दबी दुबकी रहती है ।

-१४७-

जो शास्त्र म नही मिलता वह ज्ञान आत्म-व्यथा म मिल जाता है ।

-१४८-

एक लम्बे धर्म तक समाज का सुधार ग्रोर कुरीति का

निवारण मानो कहानी लेखन के प्रेरणा-सूत्र बन रहे। 'नई कहानी' अवगाहन में जाती है, यह उसकी प्रगति शुभ है। लेकिन यह तो समग्र काल की ही गति है और जीवन विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलता ही है। आज सूक्ष्म संवेदनाओं के आकलन का प्रयास अधिक दीखता है, घटना के घटाटोप का आग्रह कम है और यह शुभ लक्षण है।

-१४६-

सच यह है कि लिखना कोई काम ही नहीं है। काम होता तो कबीर जुलाहे क्यों बने रहते और तुलसी ने भी कभी अपने को 'रायल्टी वाला' कवि क्यों न माना होता। यह सब इसलिए कि लिखना काम नहीं होता है। यह तो पश्चिम ने उसे धंधा बना दिया है, कम्यूनिज्म ने तो सबसे ही ठाठ का धंधा बना दिया है। समाज और राज की महिमा ही कहिये कि जो चाहे बना दें। सच में गहरे जाए तो जान पड़ेगा कि लिखने को काम मानना और धंधा बनाना शुभ नहीं है।

-१५०-

भाषा मनुष्य की तरह अपूर्ण ही है। वह कृतार्थ वहां है जहां वह संकेत करती है। वह सत्य का आग्रह देती नहीं केवल साभार लेना चाहती है।

काम, प्रेम : सौन्दर्य

-१५०-

प्रेम और मैथुन मे अन्तर है। मैथुन प्रकृतिगत है पर प्रेम मे वेदना है। मैथुन देहज है पर प्रेम उत्तरोत्तर देहातीत। प्रेम मे सहने की सामर्थ्य चाहिये, वह आयास साध्य है। मैथुन तृप्ति रूप है प्रेम अभाव रूप है।

-१५१-

स्त्री से पुरुष को छुट्टी नही मिल सकती। जब तक पुरुष है वह अधूरा है इसलिए मैं विवाह को अनिवार्य धर्म मानता हूँ। पुरुष रहे और स्त्री से निरपेक्ष रहे यह असत्य है। निरर्थक नही, यह अनर्थक है। स्त्री हो और पुरुष को उपेक्षा देकर वह जीये, यह असम्भवता है अनृतायता है।

-१५२-

सयम और प्रेम की उस परस्पर पूरक स्थिति को समझ कर जो व्यवहार साधा जाएगा उसमे प्रेम सहजता से अपार्थिव होता जाएगा।

काम, प्रेम सौन्दर्य, ६३

-१५३-

महात्म्य सती का ही सुना है। कुमारी ब्रह्मचारिणी की महिमा सुनने में नहीं आई। और पत्नी हो तभी तो कोई सती होती है। सती होने के लिए क्यों पत्नी होना आवश्यक है? जो पत्नि बन सकी ही नहीं वह क्या फिर सती भी बन सकेगी?

-१५४-

रूप अंग में नहीं होता अन्तरंग में होता है।

-१५५-

रूप देखने वालों की आँखों में है।

-१५६-

विवाह विधि की लकीर से स्वर्ग और नरक अलग होते हैं।

-१५७-

प्रेम ही प्रिय है पर प्रेम तो दुःख है। दुःख में से सृष्टि होती है।

-१५८-

काम और कामना खराब चीजें नही है। चीज खराव ब्रह्मचय भी नहीं है। पर दाना आपस में रूठते हैं तब खराबी पदा होती है। मैं नही जानता कि ब्रह्मचय काम को पोषण क्यो नही दे सकता। ईश्वर अनन्त काम रूप जगत का सचालन करता है तो क्या इसी सामर्थ्य से नहीं कि वह स्वयम निष्काम है।

-१५९-

लोग जब बहुत निकट होकर एक दूसरे को मिलते हैं तब उनकी स्वभाव विषमताए एक दूसरो को स्पश करती है। उस समय तो उन्हें एक प्रकार का स्पश सुख होता है, जस फोडे को हल्के हल्के छूने मे। जब और पास आते है तब स्वभाव की उभरी हुई विषमताए टकराती हैं।

-१ ०-

प्र म म मयादामा की सष्टि हाती ह।

-१६१-

वह प्र म भयावह ह जिसम अभाव नही तृप्ति है।

-१६२-

प्रेम म नियम नही होता। नियम आदमी बनाता ह। प्रम पर उसका वम नही। वह एमी चीज है जसे भूकम्प।

-१६३-

प्रेम आदमी को निवल बनाता हैं।

-१६४-

सौन्दय ईश्वर के ऐश्वय का रूप ह मौन्दय शक्ति है, सौन्दय आदश ह। वह स्फूर्ति देता हैं पवित्रता देता है बलि की प्रेरणा देता ह।

-१६५-

स्त्री को प्रेम की सफलता पर मतृत्व मिलता ह जबकि पुरुष का कतृत्व उस सफलता पर समाप्त होता है।

-१६६-

प्रेम स्वयम् अपनी व्यथा सहना सीखाता हैं। विद्रोह विरह प्रेमी का आप ही रस प्रद बन जाता है।

-१६७-

प्यार की सेज तो काटे की होती है, उसको आग मे आराम जले बिना रह नही मकता।

-१६८-

भोग से व्यक्तियों के बीच का अन्तर बढता ह और सयम से उनमे प्रेम दृढ होता हैं।

-१६९-

जो चीज एक ओर से दूर को पास करती ह, वही दूसरी ओर से पास को दूर बना देती ह।

-१७०-

प्यार म म आदमी कष्ट पाता ह और कष्ट देता है और यही किसी और किसी का वश नही चल सकता।

-१७१-

सब बीत जाता हैं पर प्यार जीता रहता है। कौन अपना प्रेम को भूल पाता हैं। इसमे प्यार के जो लोग आए

मानवता उन्हे भूल नही मकी। वे मदा उमके अन्तरग म घडक्ते रहेंगे।

-१७२-

प्र म ही क्या जीवन नही हैं ? उससे वचित होकर व्यक्ति कसे न जड हो जाए ?

-१७३-

प्रेम म हमे स्वाद आता हैं पर प्र ेम अपने को द डालने की आतुरता के सिवाय क्या हैं ?

-१७४-

प्र ेम और नही वह विश्वास ह। प्र म म कामना नही हो सकती इसमें इतनी अपूणता ही नही हो सकती। मच्चे प्र म का दूसरा नाम ह विश्वास।

-१७५-

प्र ेम जीवन को बहलाने की वस्तु तो बन सकती है लेकिन जीवन उसके लिय स्वाहा नही किया जा सकता। जीवन तो दायित्व है।

-१७६-

स्वच्छ और वास्तव प्रेम आधिपत्य आकाक्षा से कुछ सम्बध नही रखता है। वह उसकी प्रसन्नता उसका सुख उसके मतोष की ओर सचेष्ट रहता है उस पर कब्जा कर लेना नही चाहता।

-१७७-

हम कहते हैं पति और पत्नि, प्रेमी और प्रेयसी, माता और पुत्र बहिन और भाई वह ठीक है। वे तो स्त्री-पुरुष के मध्य परस्पर योगायोग के माग से बने नाना सम्बन्धो के लिए हमारे नियोजित नामकरण हैं। किन्तु सवत्र कुछ बात तो समभाव से व्यापी है। सब जगह स्त्री-पुरुष इन दोनो म परस्पर दीखता है आशिक समपण आशिक स्पर्धा। सब कही एक दूसरे के प्रति इतना उन्मुख ह कि वह उसको अपने भीतर समा लेना चाहता ह।

-१७८-

दो सच्चे व्यक्तियो के बीच स्वच्छा पूवक अपनाया गया त्यागमय विछोह ही सत्य है। उस विछोह म स्नेह का अधिष्ठान है। भोग एकदम गलत है। क्योंकि भोग मे स्नेह की महत्ता नही स्नेह की समाप्ति है। स्नेह विछोह

म हो जाता है, जलता है, पलता है, इससे स्नेह का सार है विरह। भोग का सूत्र है त्याग।

-१७६-

प्यार सपने से होता है सच से हो तो उसको सपना कर देता है। और सपने पर मन चलता है काम नहीं चलता। सपन मे मन से उडते है सच पर पाव से टिकते है।

-१८०-

प्रेम की बात प्रेम से अलग चीज है। प्रेम में पड़कर अक्सर बात सूझनी ही नहीं।

-१८१-

प्रेम गड्ढा छोड़ जाता है। काल का काम है वठा-वठा कर गड्ढा को भर।

-१८२-

अन्तानता में कीटाणु भय की धूप से हो मरेंगे आँखों में उन्हें लुकाने छुपाने की नीति से वे अंधेरा पाकर और भी बढ़ जाते हैं। बुराई अंधेरे में पनपती है। हवा और

धूप लगने से यह छू होनी दीखती है।

-१८३-

विवाह समर्पण का सम्बन्ध है। और समर्पण की भावना उसके प्रति सम्भव है जो सर्वथा ज्ञात ही नहीं है बल्कि जिसमें अज्ञात काफी कुछ है।

-१८४-

मेरा ख्याल है कि मानवजाति ने नाना काला और देशो में सभोग के नियमित करने की आवश्यकता को लेकर तरह-तरह के प्रयोग और परीक्षण किये होंगे विवाह वैसा ही एक प्रयोग है। वह सभोग के लिए नहीं है, सभोग को संयत करने के लिए है। इसलिए मैं मानता हूँ उसका आधार भोग नहीं, विसर्जन है।

-१८५-

एक तरह से भोग के लिये संसार नहीं है। पर, कर्तव्य स्वयम् ही क्या उपभोग्य नहीं है? कर्तव्य कर्म करने के बाद जो आनन्द व्यक्ति को प्राप्त होता है क्या विषयिक तृप्ति उसकी समता कर सकती है? इसलिए यह कहा जा सकता है कि भोग भी कर्तव्य में ही समाया हुआ है नहीं तो विवेक हीन

होकर भोग तो दुख ही पदा करता है।

–१८६–

भत्सना वश्या बनी नारी की नहीं है वल्कि हम सबकी है। उस पूरे समाज की है जहां नारी को रूप–जीवी बनना हुआ है। मूल्य जब तक आर्थिक रहेंगे वश्या मौजूद रहेगी। वश्या चिन्ह है रोग का निदान भीतरी है। भोग्य होकर नारी वस्तु बन जाती है जबकि है वह व्यक्ति। पसा यही मल करता है। चेतन को जड कर उस पण्य पदार्थ बना देता है।

–१८७–

मैं भोग को योग के विरोध म देख नहीं पाता हूं। जस कि बचपन को युवावस्था के विरोध में नहीं देख पाता हूं। भोग को नष्ट करके कोई योग सधेगा यह भ्रान्त धारणा है।

–१८८–

काम (सेक्स) क्या कामना स अलग चीज है? कामना का मुख्य रूप काम है। यों भी यह सत्य है कि विविध कामनाओं क नीचे मुख्य मन्त्र काम प्र रणा है।

-१८९-

विवाह सामाजिक सस्था है। उससे परिवार बनता है जो समाज की इकाई है। उसे केवल दो का निजी सम्बन्ध समझना और उस आधार पर विवाह को स्थापित करना गलत होगा। क्योंकि तब उसकी भूमिका सामाजिक न होकर कामुक होगी।

-१९०-

सौन्दर्य स्वास्थ्य से अलग और क्या है ?

-१९१-

विवाह की ग्रन्थी दो के बीच की ग्रन्थी नही है वह समाज के बीच की भी है। चाहने से न हो क्या वह टूटती है ? विवाह भावुकता का प्रश्न नही व्यवस्था का प्रश्न है। वह प्रश्न क्या यो टाल टल सकता है ? वह गाठ है जो बधी कि खुल नही सकती टूट तो टूट भले ही जाये। लेकिन टूटना कब किसका श्रेयस्कर है।

-१९२-

ऊपर से प्रभावित करने की इच्छा अन्दर से प्रभावित करने

यो नक्ति के दिवाल का नाम ही हो सकता है। गुरा का विश्वास नहीं तो रूप का शृङ्गार आवश्यक हो ही जाना चाहिए। रूप–सज्जा की ओर ध्यान कम तभी हो सकता है जब गुण की ओर ध्यान अधिक हो।

१६३–

मेरे विचार से देखने वाले के मन से अलग होकर सौंदय अपने आप में कुछ है यह प्रतिपादन करना कठिन होगा।

–१६४–

सुन्दरता सब जगह काम आने वाली चीज है। तपस्वी सुन्दर क्या न हो ? पण्डित ना अपने को सुन्दर क्या न रखे ? कुछ और गुण पीछे भी क्या न दीखें सुन्दरता तो सामने से ही दिखाई देती है। उससे काम आसान होता है। सुन्दरता गुण है चाहो तो आयुध भी है।

–१६५–

धीरे धीरे करके ही सौंदय दूसरे के मन में उतर कर घुलता जाता है। जो चौकाये वह सौंदय विशेष गहरा नहीं होता है। यह तो अमर उतर जाने वाला–घुल रहने वाला पदार्थ है।

-१९६-

अच्छा बुरा होने वाले म नही देखने वाले की आँख म होता है।

-१९७-

सौदय कहाँ नही है ? सौदय परम सत्य है परम सत्य की अभिन्न विभूति है सत्य की भाति सब ठौर व्याप्त है। जिसकी जहाँ आव है वहां ही उसे वह देख लेगा। इसीसे अम्बर नीला है धूप भकभकाती धौली खिलती है धरती हरी भाती है, रात तारा टकी यामल सुहाती है प्रभात गुलाबी अच्छा लगता है।

-१९८-

स्त्री-पुरुष दोनो अपने मे अधूर हैं। पूण अध-नारीश्वर है। इसस पुरुष स्त्री म न होय यह सम्भव नही है।

-१९९-

हमारा मर्यादा का तकाजा है कि प्र म और विवाह दो समानान्तर रेखा म चल। इसमे वे कभी मिलेंगे नही और एक दूसर को काटेंगे भी नही। -

-२००-

प्र मिका क लिए प्र म इसलिए हाता ह कि वह पत्नी जो नही ह।

-२०१-

स्त्री पुरुष के बीच ग्राकपण ता है। वह वज्ञानिक तथ्य है। ग्राप उससे नाराज हो ग्रौर लडे या प्रसन्न हा ग्रौर सराह यह ग्रापके वश की बात नही है कि उस मिटा दें। फिर ब्रह्मत्व को साधने वाली वह ब्रह्म की चर्या क्या है।

-२०४-

प्र म क विवाह म ग्रागे प्र म नही रहता इतना ही नही बल्कि प्र म का घ णा बनना पडता है।

-२०५-

पति क मन म प्रमी का मान हो। ईर्ष्या ग्रौर विग्रह का उचित माना जाना समाप्त हो जाय। उसी तरह पत्नी में पति की प्र यसी क लिए ग्रादर हो चलना चाहिए। सौतिया-डाह की भा यदि परम्परा ह तो मानना

चाहिए कि वह बबर युग की है। उसमे मनुष्यता नही पशुता है।

-२०४-

अर्थ एवं काम का समाहार प्रेम से अन्यत्र कही नही है।

-२०५-

स्वर्ग अपने अपने सबने रचे हैं। सब मे कितनी भी भिन्नता हो, इस बात मे वहा समानता है कि प्रेम वहाँ मुक्त है। और वहा मर्यादा नही है अभाव नही है।

-२०६-

प्रेम तो एक रंगीन स्वाब है जो आँखो की वजह से बाहर हो जाता है। यों वह कही है नही।

-२०७-

स्त्री और पुरुष के मध्य जो आकर्षण है वह परस्पर उन्हें आत्मदान में मिलाये बिना रह नही सकता। यह आत्म विसर्जन और आत्मदान की अनिवार्यता मूलगत और टिकने वाली है। यह सब मनुष्य पर है

कि उसे अध्यात्म वृत्ति से लेकर उपयोगी करे या तिरस्कार के भाव में अवहेलित करें।

-२०८-

पति वास्तविकता है। वही टिकता है वह सपना नहीं है कि उड़ जाय।

-२०९-

स्त्री इसलिए नहीं है कि पुरुष को अपनी ओर ले। उसकी सार्थकता इसमें है कि वह पुरुष को आगे उत्तरोत्तर करे। वह पीछे रहने को है इसलिए कि किसी भाँति पुरुष पीछे न हो पाए।

-२१०-

पुरुष अपने में पूर्ण हो सकता तो सृष्टि के विधान में स्त्री की आवश्यकता न थी। ऐसे ही स्त्री अपने में पूर्ण हो पाती तो पुरुष अविद्यमान ही रहता। दोनों यदि हैं और परस्परता के बिना चारा नहीं है तो विग्रह जितना भी होता रहे सन्धि की भूमि अनन्य आवश्यक है। पति पत्नी-सम्बन्ध विग्रह के बाद सन्धि के लिए स्थायी भूमिका देता है।

-२११-

स्त्री की लगन स्थूल की ओर विशेष रहती है। सूक्ष्म की लगन प्रतिमा कहलाती है।

-२१२-

अश्लीलता का सम्बन्ध मनोभाव से है। झूठ बिना अश्लील हो सकना नहीं और जहां झूठ है वहाँ अश्लीलता के बीज अवश्य है।

-२१३-

पुरुष को स्त्री चढ़ायेगी, चढ़ाती जायगी यहाँ तक कि या चाहे दुर्लभ पड़कर वह स्त्री के लिए खो ही जाये। लेकिन मुड़ने स्त्री उसे नहीं देगी। भाग-ले सकती है फिर भी अपने समक्ष और आगे उसे ठेलते जाने के धर्म में स्त्री विमुख नहीं हो सकती।

-२१४-

स्त्री क्या चाहती है? अधीनता और स्वतन्त्रता। शायद एक साथ दोनों चाहती है। स्वतन्त्र होकर किसी को अपने अधीन रखना और पूरी अधीन होकर किसी को

मपने ऊपर सवथा स्वतन्त्र पाना।

-२१५-

नारी यदि कातर है तो वही एक जगह सतेज भी है। स्नेह के पक्ष म ही वह कोमल है पर उस स्नेह को लेकर ही वह प्रतिशय दृढ़ हो सकती है।

-२१६-

मुष्टि-बल म मनुष्य को प्रवल मान भी लो पर वाक-बल म स्त्री के प्रागे मनुष्य कोई भी चीज नही है?

-२१७-

अपने स्त्रीत्व पुरुषत्व को प्रभिमान रखने के लिये हम नहीं मिलने गये हैं। हम एक दूसरे म अपना विलय खोजना होगा। नहीं तो सफलता नहीं परिपूर्णता नहीं। भगवान अर्धनारीश्वर है तो क्या? इसलिए कि कोई अपने को बखान म बन्द न रहे।

-२१८-

जो ऐसा मानता है कि नारी नरक की ओर ले जाने वाली

है तो ऐसा साधु वास्तव में साधु नही है।

-२१९-

प्यार मे व्यक्ति अनायास निस्व बनता है अथात स्वत्व को निछावर कर डालना चाहता है। प्यार क अतिरिक्त जब हम अपने पास कुछ रोक रखते हैं तो असल म उस बहाने अपने स्वत्व को ही अपने पास सचित और सुरक्षित बनाये रखना चाहते हैं।

-२२०-

प्यार एक प्यास है।

-२२१-

यह समुद्र है। प्यास लगेगी तो उसके पास जाओगे ? पानी ही पानी है लेकिन पियोगे ?

-२२२-

मैं हर दावा से ऊपर तुम्हारी हू। और तुम्हारे निकट सदा अभय हू। मुझसे ज्यादा यह तुम जानत हो सागर मर्यादा नही तोड़ सकता है। इस सम्बन्ध म वह

विवश इसलिए है कि यह सागर है। तुम भी विवश इसलिए हो कि तुम में प्यार है। तुमने कभी चाहा नहीं लेकिन हर क्षण तुम्हारे मार्ग में प्रकट रही हूँ और हो सकती हूँ। लेकिन उस नग्न प्रकटता का तुम्हारे निकट कोई उपयोग न हो सकेगा यह जानती हूँ। इसीलिए पति को बिना खबर दिये भी तुम्हारे पास चली आती हूँ। क्योंकि इस प्यार का सत्त जो मुझे तुमसे मिलता है, उसके बल से पति के निकट कभी मैं झूठ नहीं पड़ सकती हूँ।

-२२५-

पुरुष में स्त्री से यदि दूरी रहे तो क्या उसमें चाह में तीव्रता नहीं आ जायगी।

-२२४-

विवाह के बाद कोई कन्या पुत्री नहीं रहती एकदम पत्नी हो जाती है। अर्थात उसका स्वत्व हस्तांतरित हो जाता है।



अर्थ : कर्म

-२२५-

भ्रष्टाचार अर्थ सभ्यता का फल और बल है।

-२२६-

पैसे में शक्ति है। शक्ति में मद है। मद विष ही ठहरा। उसमें स्वतन्त्रता की हानी है।

-२२७-

व्यक्ति का विकास सामाजिकता में है। उसकी परिपूर्णता समाज से विलग नहीं देखी जा सकती। इसलिये पदार्थ पर अधिकार और स्वत्व भी व्यक्ति मूलक नहीं हो सकता। स्वत्व यदि है तो सब का है, समाज का है।

-२२८-

आप पैसे वाला होना दस और को उसमें वंचित रखना है। और यदि कोई पैसे वाला बनता है तो मेरा ख्याल है इस कारण उसे बल्कि निम्न समझना चाहिए।

अर्थ धर्म/८५

-२२५-

भ्रष्टाचार भ्रथ सभ्यता का फल भ्रौर वल ह ।

-२२६-

पसे मे शक्ति ह । शक्ति म मद है । मद विप ही ठहरा । उसम स्वतन्त्रता की हानी ह ।

-२२७-

व्यक्ति का विकास सामाजिकता म है । उसकी परिपूरणता समाज से विलग नही देखी जा सकती । इसलिये पदाथ पर अधिकार भ्रौर स्वत्व भी व्यक्ति मूलक नहीं हो सकता । स्वत्व यदि है तो सब का है, सभाज का है ।

-२२८-

भ्राप पसे वाला होना दस भ्रौर को उससे वचित रखना है । भ्रौर यदि कोई पसे वाला वनता है तो मेरा ख्याल है इस कारण उसे वल्कि निम्न समभना चाहिए ।

भ्रथ कम/८५

-२२९-

जिसको शोषण कहा जाता है, उसकी जड मे सकीर्ण स्वार्थ की वृत्ति है।

-२३०-

पैसे ने परिश्रम का सम्मान नष्ट कर दिया और उसे किराये की चीज बना दिया।

-२३१-

किन्ही दो के बीच अगर दासता और प्रभुता का सम्बन्ध रहने दिया जाता है तो उस रोग का उत्कर्ष स्वभावत डिक्टेटरशाही मे सम्पूर्ण होता है। इस अर्थ मे कहा जा सकता है कि पूजीवाद डिक्टेटरशाही को जन्म देता है।

-२ ८-

जिन यन्त्रो के कारण मानव सम्बन्ध बिगडे जिनमे दो व्यक्तियो के बीच मालिक और मजदूर का सम्बन्ध बनता हो वही निषिद्ध है। एक मालिक हो दूसरा मजदूर हो यह स्थिति समाज के लिए विषम है और इसमे विस्फोट का बीज है।

-२३३-

खुद पसे वाला होना भिखारी के भिखारीपन मे सहायी होना ह । धनवान होना निधन का व्यग करना ह ।

-२३४-

कम के फल से बचना सम्भव ही नही है कारण कि फल कम से अलग नही है वह क्रिया के साथ ही है ।

-२३५-

जो कर्म किसी भीतरी प्र रणा से नही, वाह्य आकाक्षा मे प्र रित है वह कदाचित् ही टिकाऊ होता है ।

-२३६-

धम या पराक्रम ता थोथा गव है वह टूट जाता है और सम्राट मरन क साथ ही मर जाता है ।

-२३७-

क्राति जब तक ध्येय और मिशन रही दूर रही, तब तक उसम शक्ति रही, तब तक उसम आत्मा की प्रेरणा

प्राप्त की जा सकी है। उसके घटित घटना होने के बाद देखा गया कि मन्जिल अभी आगे है और भ्रान्ति प्रत्यक्ष समक्ष होकर अमभर रह गयी है।

-२३८-

जिन्दगी म दो चीजें हैं विचार और कम। अमल म ता ये दो नहीं होनी चाहिये। उन म पूर्वापर सम्बन्ध होना चाहिये। करना विचारने का फल होना चाहिये।

-२ ९-

व अपराध करन को सत्याग्रह और फासी चढने का शहादत कहत हैं। कानून ताडन को व अपना धम तक बना लेते हैं। विद्रोह उनका धम माग है विप्लव उनका जीवन। व एम चार हैं जो सीना जोर भी है। अपराधी गुल्लम गुल्ला बनकर व समाज क नता और इतिहास के उन्नायक बनत है।

- ८०-

धम अनिवाय है और मनुष्य नितान्त स्वत त्र नहीं है। धम की परिधि म घिरा है उस परिधि क भीतर स्वत त्र है। परिधि स बाहर भागकर वह नहीं जा सकता।

वह अपना दुर्भाग्य समझे या सौभाग्य, जग का तन्त्र ही ऐसा है ।

-२४१-

सब के माग भिन्न भिन्न हैं यद्यपि सबके अन्त एक हैं। वह माग किसी के लिये भी मखमल बिछा नही है वह तो दुपथ ही है। जो उस माग पर चलना ही नही आरम्भ करते उनकी बात छाड दो—व तो सचमुच निरकुश रह कर जो जी चाहा उसम भूले रह सकते है। पर जो माग पर चलने के अधिकारी हो गये, फिर उन्हे जी चाहे जो करने का अधिकार नही रहता ह। उनका तो माग खड्ग की धार को तरह एक रेखा रूप निश्चित और सकरा बन जाता ह।

-२४२-

ऊचाई आदमी की आमदनी क बराबर होती ह या कहना चाहिये खच के बराबर।

-२४३-

हर आदमी क पेट एक ह मगर हाथ दो है। इस तरह यह ऋण नही है धन है। लेकिन हमारी समाज व्यवस्था

दूपित हो तो वही ऋण हो सकता है।

-२४४-

गांधीजी कहते थे कि मेरी कई दुकान चल रही है। सचमुच दुकान की तरह अपने रचनात्मक संघो की पाई पाई का वे ध्यान रखते थे। करोडो रुपया लोगो का लेकर अपनी दुकानो म लगाने म उन्होने अपने अध्यात्म की क्षति नही देखी। बल्कि इसी म से सत्यरूप परमेश्वर की उपासना का उन्होने लाभ अनुभव किया। अपरिग्रह ही उन्हें करोडो के फण्डो का सचालक बनने द सका।

-२४५-

सद्भाव दिखाकर पहले परिचय सीधा जाय साख बनाई जाये फिर उस परिचय और साख म से पस खींचे जाय। यह क्या है ? यह अनीति नही है ?

-२४६-

दान देने का महत्व है। लिये बिना चल नही सकता जो लिये, बिना नही चल सकता। कुछ या कोई अपने म पूरा कब नही है। औरो के साथ किसी न किसी तरह वे सबध म वह जुडा हुआ है। इन सबधो के जरिये अपने

लिये वह ग्रापमोपन जुटाता ह ग्रौर ग्रपनी ग्रात्मीयता को फैलाता ह । चेतना का स्वभाव ही यह ह । शास्त्रकार न जीव का लक्षण परस्परोपग्रह कहा ह यानि लेन देन क द्वारा ग्रापस में एक दूसरे क काम ग्राना ।

–२४७–

ग्रहभाव से दिया गया दान दीनता ग्रौर विषमता पोपन वाला ग्रौर बढ़ान वाला ह । धम ग्रकिंचन भावना से दिया गया दान प्रीति ग्रौर सद्भाव बढायेगा ।

–२४८–

सचमुच यदि हम दीन के प्रति प्रेम से खिचकर सेवा सहायता करना चाहते हैं तो उसकी दिशा यही हो सकती है कि हम ग्रौर वह बराबरी पर ग्राकर मिल। पर क्योंकि सब दीन धनिक नही बन सकने यानी मैं सबको धनिक नही बना सकता । इससे बराबरी का एक ही माग रह जाता है कि मैं स्वय स्वेच्छा पूर्वक दीन बन चलू ।

–२४९–

धनवान होने म स्वाद तभी तक है जब तक कि पडाम

म थाई निधन भी है। अगर मुझे उस स्वाद का लाभ है वह रस मुझे अच्छा लगता है तो यह बात झूठ है कि मुझे दीन की दीनता बुरी लगती है। दीन के दैन्य म मुझे जब तक अन्दरूनी तृप्ति है तभी तक स्वय धनवान होने की तृष्णा मुमम हो सकती है।

-२५०-

भेद के लिये सहारा पस या न हो तो भेद रहे कसे ?

-२५१-

पसा उठा लिया जाता है इन्सान को छोड दिया जाता है। उसकी कीमत पसे की भी नही है। मैं जानना चाहता हू कि यह अनथ कस होने म आया ? क्या यह जरूरी नही है कि जस पसे की तरफ प्रीति का हाथ बढता है वस ही बल्कि उससे भी अधिक इन्सान की तरफ हमारा प्रेम का हाथ बढ़े।

-२५२-

घर और दफ्तर म दूरी है उतनी जितनी स्नेह और स्वाथ म। इसलिए अगर दफ्तर बन्द है तो घर यार है।

प्रत्यक व्यय एक प्रकार को प्राप्ति है। हम रुपये दते हैं तो कुछ और चीज पाते हैं। ऐसा हो नही सकता कि हम द और लें नही और कुछ नही तो वह गव और सम्मान ही हम लेते हैं कि हम कुछ ले नही रहे हैं। विना कुछ हम दिये जब रुपया चला जाता है तव हमे बहुत कप्ट होता है। रुपया खो गया इसके यही माने हैं कि उसके जाने का प्रतिदान हमने कुछ नही पाया।

-२५४-

पसा है इसमे आनन्द भी है। मान लेता हू कि आनन्द का विधान आर्थिक है। जीवन का विधान और समाधान आर्थिक है। पसा चल रहा है इसी से जीवन चल रहा है। उनके चलाये चल रहा है जिनके कहने पर पसा छपता और वनता है।

-२५५-

दृष्टि सम्यक हो तो श्रम ही धन है। इस दृष्टि से धन श्रमिक का है। इसलिये जो श्रमिक का है उस धन का वितरण ऐसा होना चाहिये जिसमे मुद्रा की तुलना म श्रम का और श्रमिक का महत्व बढ़े। श्रम और श्रमिक

म स्वावलम्बिता आये और पर निर्भरता दूर हो।

-२५६-

मगावी उन ख्याली कीमतों म है जो हमने चीजों की रखी है।

-२५७-

यह सारी प्रसिद्धि और वैभव मनुष्यता का व्यंग करते दीखते हैं।

-२५८-

लोग अर्थ की भाषा म इकोनोमी का विचार करते हैं। सच म काम की इकोनोमी और भी मौलिक है। प्रेम का यह अपरम्पार धन हम सहज प्राप्त हुआ है। मुद्रा धन तो इतना व्यापक कभी बन नहीं सका। प्रेम तो हर एक के पास है।

-२५९-

बहादुर अमीरों को ठोकर मारता है बनिया उससे चिपटता है। बनिये को नंगा कर छोड़ो। उसका

वनियापन उतार लो। उस आदमी बनने दो।

-२६०-

बहादुर अमीरी जीतता है बनिया उसे ठगता है। बहादुर को सिर झुकाओ बनिये की अमीरी छीन लो।

-२६१-

इस सभ्यता की उपज वे दसिया मंजिला की हवेलियां हैं तो गिजविजाती चाले भी है। दृष्टि का छल है वह जो इन्हें अलग दिखाता और बताता है। ये दोनों सिरे परस्पर को थामते हैं और एक हैं।

-२६२-

मनुष्य अपने को गिने और दूसरे मनुष्य को भी गिने इस नाते की वह मनुष्य है। वह इज्जत दे और अपनी इज्जत मान। यह स्थिति आयगी तब जब पैसे का मूल्य मनुष्य से निरपेक्ष और स्वतन्त्र न रहेगा।

-२६३-

हर्म्यों में ममारी और कुटिया में वीतरागी निवास करते

मुन जाते हैं। शायद कारण कुटिया का छुटपन और हवेली का बडप्पन न होकर यह हो कि हवेली मुहल्ले म घिरी है और कुटी खनाकाश म मुक्त।

-२६४-

सच ता यह है कि जिस खुलापन चाहिये वह मकान के चक्कर म ही न पडे। मकान वही जो घिरा है।

-२६५-

सामान बढाकर और बटोरकर महानुभूति से आदमी हीन होता है। महानुभूति बढने पर सामान अनिवायत ही कम होता जाता है। क्योंकि वह आसपास बटता जाता है।

-२६६-

जापान की औद्योगिक सफलता का एक राज यह भी है कि मशीन म सो उसने काम लिया लेकिन उसम घरेलूपन का निबाहा। इससे श्रम की किस्मत वहा महगी नही हुई और श्रम समस्या भी उतनी विषम नहा हुई। इसलिये सस्तेपन म वह सब देशा को मात कर सका।

-२६७-

वस्त्र लोक जीवन के लिए अनिवाय है। उससे मर्यादा शीलता और शुचिता का रक्षण होता है। वह वासना पर आवरण है। पर नही वस्त्र वही तक नही रहा है। वासना को ढकन नही दिखाने या बढ़ाने तक का साधन वह होने लगा है।

-२६८-

बडे व्यावसायिक उद्योग टूटे इसकी सीधी राह यह है कि मैं नैतिक भावना से कोई भी छोटा-मोटा उद्योग शुरू कर दू।

-२६९-

उपयोगिता की दृष्टि से आपके लिए उपयोगी वही वस्तु हो सकती है जो कल या परसों अनुपयोगी हो जाय। जिसम अनुपयोगी होने का सामर्थ्य नहीं, वह वस्तु उपयोगी ही नहीं है।

-२७०-

खाली वक्त भारी हो जाता है, काम मे काटो तो कट

सुन जाते हैं। शायद कारण कुटिया का छुटपन और हवेली का बड़प्पन न होकर यह हो कि हवेली मुहल्ले में घिरी है और कुटी वनाकाश में मुक्त।

-२६४-

सच तो यह है कि जिसे खुलापन चाहिये वह मकान के चक्कर में ही न पड़े। मकान वही जो घिरा है।

-२६५-

सामान बढ़ाकर और बटोरकर सहानुभूति से आदमी हीन होता है। सहानुभूति बढ़ने पर सामान अनिवार्यत ही कम होता जाता है। क्योंकि वह आसपास बटता जाता है।

-२६६-

जापान की औद्योगिक सफलता का एक राज यह भी है कि मशीन से तो उसने काम लिया लेकिन उसमें घरेलूपन का निवाहा। इससे श्रम की किल्लत वहाँ महँगी नहीं हुई और श्रम समस्या भी उतनी विषम नहीं हुई। इसलिये सस्तेपन में वह सब देशों को मात कर सका।

-२६७-

वस्त्र लोक जीवन के लिए अनिवार्य है। उससे मर्यादा शालता और शुचिता का रक्षण होता है। वह वासना पर आवरण है। पर नहीं, वस्त्र वहीं तक नहीं रहा है। वासना को ढकने नहीं, दिखाने या बढ़ाने तक का साधन वह होने लगा है।

-२६८-

बड़े व्यावसायिक उद्योग टूटे, इसकी सीधी राह यह है कि मैं नैतिक भावना से कोई भी छोटा-मोटा उद्योग शुरू कर दूं।

-२६९-

उपयोगिता की दृष्टि से आपके लिए उपयोगी वही वस्तु हो सकता है जो कल या परसों अनुपयोगी हो जाय। जिसमें अनुपयोगी होने का सामर्थ्य नहीं, वह वस्तु उपयोगी ही नहीं है।

~ ७०~

खाली वक्त भारी हो जाता है, काम में काटो तो कट

-२७४-

जीवन एक कोरा सिद्धान्त ही नहीं है, वह आदर्श के साथ सम्भव समझौता है।

-२७५-

मनुष्य की क्षमता सचमुच अगाध है। वह दुष्ट हो सकता है सन्त हो सकता है और दोनों एक साथ हो सकता है। हो सकता नहीं है, अपने हर क्षण मे हर सास में वह होता है।

-२७६-

आदमी वह महान नही है जिसके पास बहुत सामान है बल्कि महान वह है जिसके पास बहुत सहानुभूति है।

-२७७-

व्यक्तित्व से समाजत्व नष्ट होने के बजाय सही अर्थ मे पुष्ट ही होता है और व्यक्तित्व हीन व्यक्तियो से जो बनता है वह समाज नही सत्ता होता है, अधिक से

अधिक वह छावनी हो सकता है जो फिर मानवता का भूषण नही है।

-२७८-

जीवन क्या एक सहना ही है ? आनन्द वह नही है ?

-२७९-

जीवन का उद्देश्य है समष्टि के प्राणो के साथ एकरस हो जाना। व्यक्ति अपने को छिटका हुआ अलग अनुभव न करें, समस्त के साथ अभिन्नता अनुभव करें यही उसकी मुक्ति है यही उद्देश्य है।

-२८०-

मनुष्य ही है जो परिवार म और समाज म जन्म लता है। यानि स्वत्व को ही मकर वह नही जी सकता। आरम्भ स ही परत्व के साथ नाता बिठाकर जाना उस सीखना हाना है।

-२८१-

रचना कभी अ यसकर हुआ है ? सास चलती है उस

कहते हैं गति रुकती है तब भी मौत है, हवा रुकती है वह भी मौत है। रुकना सदा मौत है। जीवन नाम चलने का है।

-२८२-

मानव कर्म, आदर्श और सम्भव का मेल है। चाहो तो कह दो वह समझौता है।

-२८३-

इन लोगों में जिन्हें दुर्जन कहा जाता है कई तह पारकर वह भी तह रहती है कि उसको छू सको तो दूध सी श्वेत सद्भावना का सोता ही फूट निकलता है।

-२८४-

हम सीमित हैं हमारा आदर्श असीम है। उन दोनों सीम और असीम के तनाव में से जीवन का प्रादुर्भाव हुआ है।

-२८५-

आदमी के मरने की सम्भावना है तभी आदमी को

सार्थकता है। वह सम्भावना मिट जाने पर सार्थकता ही नहीं मिट जाती अपितु उसके होने की कल्पना ही मिट जाती है।

-२८६-

मौत से छिपने के लिए आदमी रोज आदमियत की मौत बरदाश्त करता है। जीवन से लोग चिपटते है और आत्मा को कुचल देते हैं।

-२८७-

आदमी में जो है उस सबको आप स्वीकार नहीं करेंगे तो उसको ह्रस्व ही बनायेंगे महान नहीं बनायेंगे।

-२८८-

व्यक्ति देवता होना नहीं माना ही जा सकता है। उसे मानने में सदा ही जोर पड़ता है। उसके लिए अभ्यास और साधना की आवश्यकता होती है।

-२८९-

जीवन की गति सीधी तीर सी तो है नहीं, समस्त जीवन

सरिसप है। सिकुड़कर बढना होता है बढकर और बढने के लिये फिर कुछ सिकुड़ना चाहिये। यानि आगे जाना पीछे सोचन के बिना न होगा।

-२६०-

हर व्यक्ति मे एक सनक हाती है। उस सनक का लेकर हम उस व्यक्ति का सस्ता चित्र झट दे सक्ते हैं जिसमे वह सनक ही उस व्यक्ति की पहचान हो। कार्टून की कला का इसी भेद से विकास हुआ है।

-२६१-

व्यक्ति को हर क्षण एसा होना चाहिये कि वह एक म हा ता और सब म भी हा एकाग्र पर सर्वोन्मुख।

-२६२-

जीवन का नियम स्पर्धा नही सामञ्जस्य है। सघष नही सहयाग है।

-२६३-

आदमी म कितनी भी दुबलता हो ववरता भा हा, लकिन

गहराई म उसक देवत्व भी पडा हुग्रा है।

-२६४-

ग्रादमी म भगवान ही तो है जो करता है। वह भगवान विचारा ग्रादमी की मुट्ठी म होकर चाह तो शतान वनने तक तयार हो जाता है।

-२६५-

ग्रपन को याद रख रहना सवस वडा दु ख है भूल जाना सुख। जो जितना ही कम ग्रस्मित्व है वह उतना ही महान ग्रस्तित्व है। व्यक्तित्व (या ग्रस्तित्व) सम्पादन के लिए ग्रस्मित्व का सग्रह नही उत्सग चाहिय। इसीस देखते हैं कि जो ग्राग वढकर मरता है वह ग्रमर वन जाता है।

-२६६-

व्यक्तित्व ग्रलग ग्रलग तरह के होते हैं उनकी पूणता भी ग्रलग राह स मिलती है।

- २६७-

ग्रादमी ग्रपनी सन्तति म जीता है। ग्रौर कोई ग्रादमी

मरना नही चाहता । यानि मनुष्यमात्र सन्तति द्वारा अपने जीवन को सदा कायम रखना चाहता है ।

-२९८-

व्यक्ति की उन्नति इसमे है कि वह स्वयम अपनी इच्छाओ पर विजय पाता चला जाये, क्योकि इसीमे समाज की उन्नति भी है । व्यक्ति की आपाधापी समाज के सगठन सूत्रो को कमजोर करती है और उस व्यक्ति को भी असहिष्णु बनाकर अन्तत जीर्ण कर डालती है ।

-२९९-

सीधी भोली चिकनी दुनियाँ-दारी जहाँ गड्ढो से बच बच कर सिर्फ पक्की बनी बनाई सडक पर ही चलकर सन्तोष मान लेना पडता है कोई बहुत श्रेय की बात नही है ।

-३००-

जो मन नही मार सकता जिसे झुकना और छोटा बनना नही आता, जिसे दूसरों की सुविधा और दूसरे को निभाने की दृष्टि से झुकना और राह छोडना नही आता वह जिन्दगी मे कभी कुछ नही कमा पाता-जिन्दगी का सन्तोष भी नही ।

– ०१–

जीने म पहन करना हुआ करता था। अब दोनो जुदा-जुदा काम है। करने को दफ्तर और जीने इत्यादि के लिय घर। समय इतना कम है और करना इतना अधिक है कि घर के लिय दिन का वक्त नही बचता।

– ०२–

असफल जीवन अपनी जकड चारो ओर छोड जाता है जो मनुष्य जाति के विकास पर वेड की तरह काम करती है।

–२०३–

मानव समाज की समस्याओ को भौतिक आधार पर समझना और खोलना मेरे ख्याल म इस हतु स अपर्याप्त समझा जा सकता है कि मनुष्य कवल भौतिक ही नही है उसम आत्मा भी है। उसमें प्रम दा और प्रम पाने की माग भी है।

–३०४–

अगर वतमान म हमें पूरा सन्तोष हो तो भविष्य क लिए

-३०५-

कठिनाइयाँ जिन्दगी मे जरूरी चीज है। उनके सहारे आदमी अपने को जानता है और वस्तु स्थिति को जानता है। दुनिया में जो परस्पर का सम्मिलन आवश्यक है वह किन सिद्धान्तो पर होगा, इसका पता पारस्परिक रगड से ही होता है।

-३०६-

व्यक्ति का शुद्ध यथार्थ रूप क्या है इस तथ्य तक पहुँचना ही दुर्लभ है।

-३०७-

बाहर का सब कुछ आदमी के लिये तब तक बेकार है प्रपंच है, जब तक कि वह किसी अपने में होकर मूर्त न हो जाय।

-६०८-

कोई यहां नितान्त स्वतन्त्र एकाकी नहीं है—जो ऐसा

– ०१–

जीने म पहल करना हुआ करता था। अब दोना जुदा जुदा काम है। करने को दफ्तर और जीने इत्यादि के लिय घर। समय इतना कम है और करना इतना अधिक है कि घर के लिय दिन का वक्त नही बचता।

–२०^–

असफल जीवन अपनी जकड चारा ओर छोड जाता है जो मनुष्य जाति क विकास पर वेड की तरह काम करती है।

–२०९–

मानव समाज की समस्याओ को भौतिक आधार पर समझना और खोलना मेरे ख्याल म इस हनु म अपर्याप्त समझा जा सकता है कि मनुष्य कवल भौतिक ही नही है उसम आत्मा भी है। उसमें प्रम दो और प्रम पान की माग भी है।

–२०४–

अगर वतमान स हमें पूरा सन्तोष हा ता भविष्य क लिए

-३०५-

कठिनाइयाँ जिन्दगी में जरूरी चीज है। उनके सहारे आदमी अपने को जानता है और वस्तु स्थिति को जानता है। दुनिया में जो परस्पर का सम्मिलन आवश्यक है वह किन सिद्धान्तों पर होगा, इसका पता पारस्परिक रगड़ से ही होता है।

-३०६-

व्यक्ति का शुद्ध यथार्थ रूप क्या है इस तथ्य तक पहुँचना ही दुर्लभ है।

-३०७-

बाहर का सब कुछ आदमी के लिये तब तक बेकार है, प्रपंच है जब तक कि वह किसी अपने में होकर मूर्त न हो जाय।

-३०८-

कोई यहाँ नितान्त स्वतन्त्र एकाकी नहीं है—जो ऐसा

— ९—

जाने म पहल करना हुमा करता था। अब दोना जुदा-जुदा काम है। करने का दफ्तर और जीने इत्यादि के लिय घर। समय इतना कम है और करना इतना अधिक है कि घर के लिय दिन का वक्त नही बचता।

— ०२—

असफल जीवन अपनी जवड धारा और छोड जाता है जो मनुष्य जाति के विकास पर वेड की तरह काम करती है।

—२०३—

मानव समाज का समस्याओ को भौतिक आधार पर समझना और खोलना मेरे ख्याल म इस हतु स अपर्याप्त समझा जा सकता है कि मनुष्य कवल भौतिक ही नहीं है उसम आत्मा भी है। उसमें प्रम दने और प्रम पाने की मांग भी है।

—२०४—

अगर वतमान म हम पूरा सन्तोष हो तो भविष्य क लिए

-३०५-

कठिनाइयाँ जिन्दगी में जरूरी चीज है। उनक सहारे आदमी अपने को जानता है और वस्तु स्थिति को जानता है। दुनिया में जो परस्पर का सम्मिलन आवश्यक है वह किन सिद्धान्तो पर होगा, इसका पता पारस्परिक रगड स ही होता है।

-३०६-

व्यक्ति का शुद्ध यथार्थ रूप क्या है इस तथ्य तक पहुँचना ही दुलभ है।

-३०७-

बाहर का सब कुछ आदमी के लिये तब तक बेकार है प्रपच है जब तक कि वह किमी अपने मे होकर मूत न हो जाय।

-३०८-

कोई यहा नितान्त स्वतन्त्र एकाकी नही है—जो ऐसा

समझता है वह दायित्व से डरता है और कापुरुष है। सब कुछ उत्तरदायित्वों से बंधे हुए हैं।

-३०९-

जो जिससे बना है वह उसीमें लय हो जाता है-इसमें शोक और दुःख की बात क्या?

-३१०-

दुनिया प्रतिबिम्बित है और जाने यहां किसका क्या मोल लग जाये। मोल यहां असली है नहीं। इसलिये मोल की तौल भी मनमानी है।

-३११-

चतुर दुनियादार तनिक अकेलेपन से घबरा जाता है।

-३१२-

दुनियां मोम की चीज नहीं है और न किताब ही है जिसे पढ़कर खत्म कर सकते हो। यहां जगह-जगह टक्कर खाना पड़ता है और समझौता करना पड़ता है। जीवन दायित्व का खेल है पग-पग पर समझौता है।

-३१३-

रहने को सबके पास अपना कल्पना लोक ही तो है।

-३१४-

मरने से जीना अच्छा है चाहे जीना सदोष भी हो।

-३१५-

आंधी आती है, बडी-बडी जोर की आंधी। मालूम होता है सारी दुनियां उड जायेगी। लेकिन कुछ रेत और फूस के सिवाय कुछ नहीं उडता है। आंधी आकर चली जाती है और दुनियां अपने काम मे लग जाती है।

-३१६-

आत्मा की ओर मे विमुख होकर सामाजिकता भी प्रवचना है।

-३१७-

दुनियां सहानुभूति की ही नहीं है स्पर्द्धा की भी है। शायद दोनो हैं इसी से वह है।

दुनियाँ म कई दुनियाँ हैं और आदमी म कई आदमी। असल म चेतना मे पत पर पत है इसलिये जो है वह निश्चित नही है। वह एक रूप भी नही है। क्या है सो कहा नही जा सकता। जो है अनिर्वचनीय है।

-३१९-

सब जसे शिकार ही है वृथा ही एक दूसरे का शिकार बनाने का प्रयत्न करते हैं।

-३२०-

ईश्वर और ससार विरोधी नही है। अर्थात ससार म से ईश्वर को पाना होगा। ससार पर पीठ देकर मैं समझ नहीं पाता कि आदमी किस तरफ चल सकता है।

-३२१-

मनुष्य सहज नही जागता। काम-धाम म वह इतना व्यस्त रहता है कि दुख्यता ही उसे जगाती है यह दुख क मार्ग से ही उतरता है। इसलिए गिरिस्थिया का टूटना और लोगो क दुखों का बढ़ना इतिहास की प्रगति के लिये

ग्रावश्यक होता है।

-३२२-

विना रहस्य के तो ग्रादमी छूछा हो जाता ह। कुछ सजीव हैं इसलिये कि कुछ रहस्य हैं। कुछ ह जो पकड मे नही ग्राता। रहस्य तो जीवन का मम ही ह। वह बचे तो कसे? प्रयत्न करने से वह ग्रौर रहस्यात्मक हो जाता ह।

-३२३-

जो हम हैं वही हमारा जीवन नही है। जा होना चाहते हैं हमारा वास्तव जीवन तो वही ह। जीवन एक ग्रभिलापा है।

-३२४-

तारीफ की वात तो इसमे है कि ग्रपनी ग्राकाक्षाग्रो को उन्मुक्त कर दिया जाये। ग्रपने मन ग्ररमानो को भाग्य के मुह पर पूरा करके दिखाकर, एक विराट शक्ति के रूप को दुनियाँ की चकाचौंध के सामने स्थूपाकार पवनाकार खडा करके फिर उस ठौर से भागकर व्यक्ति एक विजन कोठरी म जीवन का शेप घडियाँ निरपेक्ष निष्काम, कृतकृत्य होकर चुपचाप विताए ग्रौर फिर

मिट जाय मेरे निकट यहा तारीफ की और यही आदर्श की बात है।

-३२५-

आप जानते हैं कानून की निगाह मे आदमी आदमी सब बराबर है। किन्तु आप यह भी जान सकते हैं कि आदमी कभी न सब बराबर हुए हैं और न होंगे। वह आदमी हो क्या जो अपने को औरो स विशिष्ट न समझे ? और यह समझदार क्या जो आदमी म फर्क करना न जाने ?

-३२६-

व्यक्ति कितना विवश है उसके अपराध भी उसके नही हैं।

-३२७-

हर व्यक्ति का अपना वृत्त है। किसी के बहुत निकट आने पर इसीमे अक्सर निराशा होती है। तुम्हारा आफ अलग, दूसरे का अलग। लगता है कि शिष्टाचार से आग उतर आने पर आपसी सम्बन्ध म एक विमोह उत्पन्न होता है और अधिकांश एक विकृत की रचना हो

पलती है।

-३२८-

कुछ और तुम्हें नहीं रोक सकता, यह ठीक है किन्तु स्वयं तुम अपने को नहीं रोक सकते, क्या यह भी ठीक है ?

-३२९-

दो के बीच कभी वह घट आता है जो दोनों नहीं चाहते फिर भी दोनों विवश होते हैं।

-३३०-

नकली आदमी बनकर जगत् से व्यवहार पालने में आसानी होती है। वहाँ मन नहीं आदमी का मान पूछा जाता है।

-३३१-

लोग क्या समझेंगे, इसका बोझ अपने ऊपर लेकर हम क्यों अपनी चाल को सीधा नहीं रखते हैं क्या उसे तिरछा आड़ा बनाने की कोशिश करते हैं ?

-३३२-

म्रान्तरिक मा सामाजिक के रूप म स्वीकाय होना म्रावश्यक है।

-३३३-

सबको म्रपनी म्रपनी जगह ्राभा है। बालक म बुद्धिमानी म्रच्छी नही लगती। उसम बचपन चाहिए।

-३३४-

जम समन्दर के बीच बूद-बूद नही होती वस ही भीड मे म्रादमी म्रादमी नही रहता। भीड का म्रपने म एक म्रस्तित्व है एव व्यक्तित्व है। वह म्रतक्य है।

-३३५-

सरल्प ही म्रादमी का बल है। वह बन ्ररा या सगय की राह स बूद-बूद म्रादमी म रिसता रहता है।

-३३६-

ममम्रप या वस्तु-जगत् की म्रधिक सुविधा चाहिए।

समय छोड़ सकता है इसलिए शक्तिमान असमर्थ को अधिक देगा और स्वयं कम लेने को तैयार रहेगा।

-३३७-

आविष्कारक दुनियाँ की सफलता से विमुख रहे हैं और प्रतिभावान् धनाकांक्षी नहीं होते। क्यों? क्योंकि दुनिया की सफलता और धन की यथार्थता से ऊँची यथार्थता का उन्हें आभास होता है।

-३३८-

सदा सबको बढ़ाना ही बुद्धिमानी है। रुककर ही आदमी कड़आ बनता है। बढ़ता जाए तो खटास भी आगे मिठास होती है।

-३३९-

जल कर ही आदमी उजलता है।

-३४०-

व्यक्ति केवल अपने में पड़कर गिरता और टूटता ही है। यह अपने को मुक्त औरों में और सब में अर्थात् निखिल में

ही मर सकता है।

-३४१-

बच्चे म चोरी की आदत भयावह हो सकती है। लेकिन बच्चे के लिए वसी लाचारी उपस्थित हो आई, यह और भी कहीं भयावह है।

-३४२-

व्यक्तित्व जो जितना समृद्ध और सम्पन्न होगा उतना ही विरोधाभासों का क्रीडा केन्द्र होगा।

-३४३-

जो ऊ ची जगहों पर हैं कितने विवश हैं। स्वय हीन की उनको उतनी ही कम सुविधा है। स्वय जितने समाप्त हो गए क्या उतना ही उनको सार्वजनिक होने का अवकाश है ?

-३४४-

दृढ सकल्प म जीवन सिद्धि है। जो बाधाओं स नहीं डरता वह ही कुछ करता है।

-३८५-

गृहस्थ कोई सुख का सेज नही वरन तप का घोर साधना का आश्रय है।

-३४६-

ससार पाप स्थली नही पुण्य भूमि है।

-३४७-

जो आश्वासन समाज पुरुष को दे सकता है, वह प्रेयसी नही दे सकती। समाज पुरुष के लिए बहुत आवश्यक है। उसके लिए एक मान का स्थान चाहिए।

-३४८-

क्या एकदम ठंडे होकर युद्ध किया जा सकता है? धरती के अन्दर आग न रह जाये तो वह टिक सकती है? इन्सान के अन्दर दिल न रह जाए तो वह जी सकता है? दिल में हिंसा होती है। युद्ध होता है जिसके लिए जीते हैं और जिसके लिए जीना तक भी मर सकते हैं।



आदर्श : धर्म

-३४९-

धम से बडी शक्ति मैं नही जानता। पर जीवन मे क्टकर जब वह पन्थ और मतवाद का रूप धरता है तब वही निर्वीयता का बहाना और पाखण्ड का गढ बन जाता है।

-३५०-

धम के नाम पर क्या जडता फलती नही देखी जाती? पर वह तभी होता है जब धम का वाद अथवा मत पन्थ बना लिया जाता है।

-३५१-

किसी प्रिय लगने वाली किन्तु साथ ही अनिष्ट लाने वाली चीज को तजने का अभ्यास सयम है।

-३५२-

सस्कृति कही यहा वहा नही रहती है। जहा उत्सग है सस्कृति वहा से आदश प्राप्त करती है।

–३५३–

पलक स ओझल करने स क्या सच्चाई को ओट म डाला जा सकता है ?

–३५४–

सत्य किसी से बहिगत नही है न सत्य से कुछ बहिगत है। भेद इतना ही है कि जितना और जो देखने जानने म आता है। सत्य उतन म समाप्त नही है। पर सत्य स वह अन्यथा भी नही है।

–३५५–

ऊचे जाओ तो उतनी हवा सूक्ष्म होता है और सांस पर जार पडता है। ऊचा होना इससे सुखकर नहीं है। मर्यादा वहां उतनी ही अधिक है जितना स्वतन्त्रता कम।

–३५६–

झूठ बात चिकनी होती ह और मन उग सरलता स बाहर फेंक देना ह। सच बात का सोचकर निकालना होना ह क्योकि वह जो मे भीतर बहुत गहरी गई होती ह।

-३५७-

वाज गड चलना चाहिये और उसको सिंचन मिलना चाहिए। फिर तो दरख्त के वडे होने मे कोई अचरज की वात नही ह। यह आक्षप की बीज छोटा ह वृक्ष की विशालता को रोक नहीं सकता।

-३५८-

सत्य स्थिरता से घिरा नही ह न अनुशासन से परिवद्ध। काल भी सत्य ही ह। काल, जो बनने और मिटने का आधेय ह अत स्थिरता सिद्धि नही ह। गति भी आवश्यक ह। जीवन अस्तित्व से अधिक कम ह। उन्नति, प्रगति परिवतन आदि इसी जीवन की परिपूर्णता क अग है।

-३५९-

हम यही करते हैं, वहुत भरामा अपना वाध लेते हैं। एम सच का छाड देते है। झूठ को ओढ लेते हैं। झूठ के ता पर हात नहा हैं वह चल नही सकता। चलना हैं तो सच के पगो पर सवार होकर। वुद्धिमानी के जोर पर जब हम उसी का चलाने की जिद करते हैं तो जिद गिरती ह और लगता है जस हम गिरते जा रहे हैं।

-३६०-

सहानुभूति मे हीन होकर मनुष्य का सुधार साधना सम्भवनीय कार्य नहीं है।

-३६१-

यदि कोई चीज स्वयम उत्कृष्ट हो तो उसे खतरा क्या हो ? वही खतरे को दूर कर देगी। खतरा निकृष्ट वस्तु को ही हो सकता है उत्कृष्ट का नही।

-३६२-

सम्मान रक्षा मे बडी आत्मरक्षा है। सत्य रूप आत्मा की रक्षा मे जो सम्मान खोया जाता है वह खोये जाने लायक है।

-३६३-

नागरिकता मनुष्यता की भूमिका है।

-३६४-

पत्थर की मूर्ति को परमात्मा बना देने वाली शक्ति भक्त

की भक्ति ही तो है।

-३६५-

एक कपड़े को झंडा कहकर इतनी शक्ति कौन दे देता है कि हजारों देशवासी उस पर कुर्बान हो जायें? यह शक्ति कपड़े के टुकड़े की है या श्रद्धा की? कपड़ा कुछ नहीं है, फिर भी झण्डा सब कुछ बन जाता है, सो क्यों? क्या श्रद्धा के कारण नहीं।

-३६६-

बीज को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने को क्षुद्र माने। श्रद्धा का लक्षण है उत्सर्ग।

-३६७-

आवश्यक होता है कि सन्त शहीद हो कारण कि उसका नियम अपने में है बाहर के समर्थन की अपेक्षा में नहीं है। समाज का नियमन करने वाला राज्य सदा समर्थन चाहता है अतः आत्मसमर्थित व्यक्ति को सामने पाकर उसको उससे चुनौती मिलती है। उसके लिये तब आत्मरक्षा की आवश्यकता हो जाती है। इस आत्मरक्षा में जरूरी होता है कि सन्त को वह दुष्ट माने और उसे समाप्त

प्रान्त धर्म/१२०

फरने का हर उपाय रचे। जसे सन्त राज की आवश्यकता का स्वयम् इन्कार हो। इस तरह वह अराजनीतिक होकर भी अनायास बडे से बडा राजनैतिक क्रान्तिकारी हो जाता है।

-३६८-

अप्राप्य मे ही आदर्श का आरोप है और वही पहुँचकर आकाक्षा गडती है।

-३६९-

फकीर मवरा होता है और फकीर में सब हैं। हिन्दु मुसलमान दुनियादारी की बातें हैं सच्ची बात में हिन्दु मुसलमान क्या?

-३७०-

स्वयम् आदर्शवाद भी और वाद की तरह थोथा होना है। वाद नहीं चाहिए आदर्श चाहिए।

-३७१-

आत्मा की ओर यात्रा करने के लिए व्यक्ति मन को युक्त रखना

है, उसका स्वभाव खुलता ही जाता है। जबकि आदर्श-वादी व्यक्ति अपने स्व के घेरे को और मजबूत ही बनाता है।

-३७२-

मनुष्य अपने आदर्श का निर्माता होने मे अधिक मानो आदर्श के हाथो अपने को सौंप कर, उसीको अपना निर्माता बनाना चाहता है। इसी अर्थ मे कवि की कविता कवि से बडी है, मनुष्यता या आदर्श मनुष्य से बडा है।

-३७३-

यह तो आसानी से कहा जा सकता है कि धर्म प्रवर्तकों ने जो धर्म चलाया अनुयायियो ने आचरण तदनुकूल नही किया। उन्होने धर्म को सम्प्रदाय के लिए एक नारा ही मान लिया।

-३७४-

हम अपने को जगत् का केन्द्र मानकर जीते है यह है विकृति। हम जगत म शून्यभाव से जीयें यह होगी सस्कृति। महत्ता से शून्यता की ओर जाना विकार से सस्कार की ओर उठना है।

-३७४-

दुनिया का धर्म तात्विक तो नहीं हो सकता। उसे तो तात्कालिक होना पड़ता है। इसमें शास्त्रों की सीधी उपदेश की बातें उसके लिये असंगत होती हैं। इस तरह धर्म का अलग ही शास्त्र होता है।

-३७६-

एक के उदय के लिये दूसरे का अस्त चाहना भूल है।

-३७७-

अध्यात्म न सिर्फ संसार से निमुक्त नहीं है बल्कि संसार के अभाव में वह अधूरा और पीला हो रहता है।

-३७८-

धार्मिक को धर्म का विरोध सहना पड़ा है।

-३७९-

वह धार्मिक नहीं जो दूसरे के धर्म के प्रति प्रेम नहीं रख सकता।

सस्कृति इस तरह मानव जाति की वह रचना है जो एक को दूसरे के मल मे लाकर उनमे सौहाद की भावना पदा करती है। वह जोडती और मिलाती है। उसका परिणाम व्यक्ति मे आत्मोपमता की भावना का विकास और समाज का सर्वोदय है।

-३८१-

सम्प्रदाय जबकि स्वय धमगत न होकर धम को सम्प्रदायगत बनाता है तब वह निश्चय ही एक स्थापित स्वाथ का स्वरूप होता है। इस व्यवस्था से वह जगत की समस्या को और उलझाता है और उसमे गाठ और पेंच पदा करता है।

-३८२-

धार्मियता से सन्तुष्ट धार्मिक अधार्मिक है और अपन पाप म दुखी और दग्ध पापी पुण्यात्मा है।

-३८३-

धम या सवन नहीं हो सकता धम मे अपनी आहुति हो दी

जा सकती है।

-३८४-

क्या कामना का होम ही धर्म नहीं है?

-३८५-

धर्म इमान उत्तर है तो मक्कारता दक्षिण।

-३८६-

धर्म जो उजलाता है हठ जो केवल जलाता है।

-३८७-

उपयोगी धर्म में अपने को भूलकर लग रहना ही धर्म है।

-३८८-

साधु यदि अलग है और गृहस्थ अलग। त्याग एक के लिए है और भोग दूसरे के लिए। एक के लिए अध्यात्म और दूसरे के लिए पद थ। तो संयम का वह त्यागी क्या

जो एसी फाक बीच मे डालती है जीवन की चौमुखी सम्पन्नता म बाधा भी वन सकती है।

-३८६-

सच यह है कि सयम म कही वाध्यता है। पूरी सहजता हो तो शायद शब्द वहा ओछा रह जायेगा।

-३६०-

सयम कत्त व्य है कत्त व्य धम मे कुछ कम है। धम सहज होना और हो सकता है। वस्तु स्वभाव को धम कहा है।

-३६१-

नैतिकता का ऐसा आग्रह जो टर कही अनीति सू घने का व्यग्र रहता है, मुझे लगता है कि एक ही साथ अश्लीलता और दभ पदा किय विना नही रह सकता।

-३६२-

सकनारी पुरुष ब्रह्मचारी दीखते नही हैं इसका यही कारण है। परमात्मा उन्हे कसता है अपनी कसौटी पर और स्त्री स और विवाह स बचने नही देता है।

ग्राचरण का है।

-४०२-

धम आवश्यक है उसी तरह जसे मकान के लिए नीव आवश्यक होती है।

-४०३-

कम की मफनता के लिए धम की स्थिरता जरूरी है।

-४०४-

विज्ञानी का आचरण इस तरह आरम्भ से अन्त तक धर्माचरण है प्रतिम और सबद्ध आचरण है। इसीलिए महान वनानिक अनायास मन्त दीखता है। वह शिशु के समान सरल और निष्कपट होता है। सचाई से अतिरिक्त वह कुछ चाहता नहीं जानता नहीं।

-४०५-

कुरुक्षेत्र में और कलियुग में यह ईश्वर को देखने के प्रयत्न को भी नहीं मोनता। इस धार्मिक का आचरण अपनी मूल मान्यता के प्रति अनायास धमहीन और श्रद्धाहीन हो

१ १, सूक्ति सचयन

जाता है। तब उस धर्म में से शक्ति प्रकट हो तो कैसे ?

-४०६-

त्याग भराव में से न आये यह हो नहीं सकता। उसी तरह यह भी कैसे हो सकता है कि भीतर अभाव हो तो वहां से त्याग बाहर आ जाये।

-४०७-

संन्यासी वह यात्री है जिसकी अभिलाषा समाज से पार हो आये। न उसे अब समाज की मान्यता चाहिये न सत्ता चाहिये। समाज की अवज्ञा भी अब उससे नीची रह जाती है। मानापमान संसारी के लिये बहुत महत्व की बात है, संन्यासी को वह छूता भी नहीं है।

-४०८-

नैतिकता में से यदि यह नमूना ही प्राप्त होना है जो धर्म की और लोक की बागडोर को हाथ में थाम नहीं पाता हाथ उसके कांप जाते हैं तो निश्चय है कि नीति को ताक पर रख कर चलने वाली खुली शक्ति मैदान के लिए रह जायगी और दुनियां की लगाम को वह हाथ में लेकर चलायेगी।

तिक साधना अक्सर देखा गया है इस तरह हम मानवता मे वह नमून द आती हैं जा पवित्र है पर पील हैं। भल हैं पर भोल है। सज्जन है पर असत्क हैं। भक्त है पर गऊ हैं। ऊचे हैं पर वेवस हैं।

४१०-

अल्ला हो अकबर और हर-हर महादेव पवित्र स पवित्र उच्चारण है लकिन धरती पर चढकर एक शतानी क सिवा व कुछ नही रह जात। तव व इसानियत क दिवाले की घोषणा हो जात हैं।

-४११-

एक काम की भलाई इतनी भर जाता है कि अजाम का बुराई भूल जाती है।



विविध

-४१२-

जीवित और शव मे क्या अन्तर है—बस यही कि शव मे से सम्भावनायें मिट जाती है। सम्भावनायें जिसम से खत्म हुई कहना चाहिए आत्मा ही वहाँ से उड गया।

-४१३-

दुनिया को सुधारने का मार्ग अपने को सुधारने के अलावा और नही है।

-४१४-

बुराई की हस्ती नही है। बुराई अपने आप म टिक नही सकती।

-४१५-

जीवित परम्परा आत्महीन नही होती वह समाप्त नही होती। उसम नाना रूपो और प्रारूपो मे खिलते जाने की शक्ति प्रवाहित रहती है।

हम जीते ही चलते हैं, बिना यह चिंता रखे कि कमर भी हमारे है। अन्त में एक दिन दर्द उठकर उस हमारी कमर को हमारे निकट ही प्रमाणित कर देता है।

-४२६-

हम तो चल ही सकते हैं पथ का अन्त तो पथिक के हाथ नहीं है।

-४२७-

मन का दुख क्या दूसरे के मन की चोट से भरेगा? आदमी ऐसा ही करता है दुख का दुख पहुँचाकर खोना चाहता है।

-४२८-

क्रोधोन्मत्त का न्याय क्रोध शून्य के लिये सदा असम्यक् और स्पष्ट अन्याय ही है।

-४२९-

सदा तुम अपने को अपने में सारी दुनिया पाते हो। दूसरे हारा पाते हो तुम दुनिया के निकट एक शून्य जरा

बिन्दु भी नही हो।

-४३०-

कुछ बिगाड न हो तो सुधार क्या हो ? झगडा न हो मेल का अवसर किधर से आये ?

-४३१-

स्वेच्छित मृत्यु मुक्ति है, मृत्यु का चित्र हमें सदा प्रत्यक्ष रहे तो क्षुद्रता मे हम न गिरें।

-४३२-

मृत्यु के द्वार मे से ही सत्य को प्राप्त करना होगा।

-४३३-

तर्क के उत्तर मे तर्क न देना आदमी से नही होता और जब नीचे तल के साधारण तर्कों की कमी होती है तब ऊंचे या गहरे तल के तर्कों से काम लिया जाता है। इसी प्रकार का एक गहरा तर्क है व्यंग एक है क्रोध एक है धमकी, और एक है मृत्यु का स्मरण और आह्वान। लेकिन सबसे व्यापक और मूर्तिमान तर्क है आँसू।

-४३४-

मागना तो नरक से भी ठीक नहीं। क्योंकि नरक का भय फिर तुम पर सवार रहेगा।

-४३५-

अपने स्त्री पुरुषों के बीच तुम ऐसे भूल जा रहे हो जैसे परमात्मा नहीं है और जवाब तुम्हें नहीं देना है।

-४३६-

क्रोध सदा अपनी नासमझी में से आता है।

-४३७-

जो सर्वथा निर्भीक है वह दूसरे में भी भय क्यों उपजायेगा?

-४३८-

तुम समय होओ, इस हेतु मैं तुम्हारे माँ-बाप मरेंगे। शावक उड़े, इसके लिए खोल का टूटना होगा। बीज मरकर वृक्ष उगायगा।

-४३९-

अहंभाव आदमी को संकीर्ण बनाता है। समर्पण व्यापक है और व्यापकता ही प्रबलता है।

-४४०-

रोग मानने से बढ़ता है। रोग की सबसे अच्छी औषधि निराहार है।

-४४१-

बड़ों की आज्ञा सदा सुननी चाहिये और कभी उनको उत्तर नहीं देना चाहिए।

-४४२-

विपत न पड़े तो आज हमारी कर्म खुले।

-४४३-

मौत ऐसी तुच्छ वस्तु है कि उसको चाहना लज्जास्पद है। चाहने को मेरे पास उससे बड़ी वस्तु है। जीवन है और मोक्ष है। मौत मोक्ष नहीं है और मैं मौत नहीं

मागता पर मौत मोक्ष म रुकावट भी क्यों है ?

-४४४-

अपने निज मे विश्वास की त्रुटि के कारण दूसरे की आलोचना की वृत्ति जगी होगी।

-४४५-

आकाक्षा अयोग्यता का लक्षण है।

-४४६-

शेखी से उपहास्य वस्तु दूसरी नही है और पागल वह जो अपने को सबसे अक्लमन्द गिनता है।

-४४७-

अपन को केन्द्र मानने से ही परेशानी होती है। मैं हूँ— यही मेरे दुख का कारण है।

-४४८-

अहता बढ़कर दूसर की अस्ता को चुनौती दिये बिना रह

नहीं सकता।

-४ ६-

भविष्य को जानने की जरूरत नहीं है वह अज्ञेय है उसीमें उसका रस है। भविष्य होता नहीं है उसका हम निर्माण करना होता है। यही हमारी मनुष्यता है। भविष्य जान जाय तो वर्तमान की तत्परता हमारी शिथिल हो जाये।

-४५०-

घूमना फिरना मस्तिष्क को विशद करने में साधारणतया उपयोगी ही है। उससे सहानुभूति व्यापक होती है और जी खुलता है।

-४५१-

आदर सघन होकर शायद आतंक हो आता है।

-४५२-

विश्वास एक वह क्रिया है, वह धर्म है, जिसमें हम विवेक पूर्वक सहयोगी होने के लिए हैं।

-४५३-

ऊचे चढन म स्वाद तभी तक है जब तक कुछ नीचे रह।

-४५४-

मयका वह मिलता है जो योग्य है। इतना बडा ब्रह्माड अनियम स नही चल सकता। ग्रह और नक्षत्र सूय और चन्द्र पृथ्वी और पिण्ड सब अपनी कक्षा म और मर्यादा म है।

-४५५-

पवित्रता शब्द रुचि और अरुचि का बाधा है।

-४५६-

आशा है इसलिए अनुताप है। भविष्य क प्रति उत्कठा है क्योंकि वतमान क प्रति तीव्र अतृप्ति है।

-४५७-

मा मीयता अन्तस्य सहानुभूति को मानता है। उसम

व्यक्ति खींचता और छीनता नहीं देता और बरसाता है। आत्मीयता मिलाती है, अहंता काटती है।

-४५८-

अहंकार आत्म के बचाव का जरिया है वह अपनी हीनता के दबाव से बचने के प्रयत्न का स्वरूप है। उसमें व्यक्ति अपने में ही उभरा हुआ दीखना चाहता है।

-४५९-

ध्यान लेकिन पर जाते हैं। जिसको सदाचारी समझ लिया जाता है, वह अपने को दुराचारी समझना छोड़ देता है। हम उसे यह समझने में मदद देते हैं और फलत वह दम्भी बनता है। हम सगह आज देखते हैं कि जो भद्र माने जाते हैं उसी श्रेणी के लोगों में वस्तुत अच्छे बनने की चिन्ता की सबसे अधिक जरूरत है।

-४६०-

उपकार तो नाप-तोल करने की और देखने की चीज नहीं है। वह साबित करने की भी चीज नहीं है और न गिनाने की।

–४६१–

दीखने को जड़ें नहीं दीखती लेकिन ऊंचे दीखने के लिये नीचे की जड़ें बहुत आवश्यक हैं।

–४६२–

स्वप्न अर्थात् छल स्वप्न अर्थात् सत्य। स्वप्न निरी छलना है अगर हमारी श्रद्धा शिथिल है और वही सत्य है यदि श्रद्धा दृढ़ है।

–४६३–

दूरी मोह पैदा करती है। दूरी मिट जाय तो सुन्दरता के बोध के लिए गुंजाइश नहीं रहेगी।



सकेतिका

पुद्ध मीमांसा

१ पूर्वो
२ प्रस्तुत
३ प्रस्तुत
४ पूर्वो
५ सोच
६ सोच
७ गोष
८ प्रस्तुत
९ पूर्वो
१० पूर्वो
११ म्यनीत
१२ प्रस्तुत
१३ प्रस्तुत
१४ गोष
१५ प्रस्तुत
१६ पूर्वो
१७ प्रस्तुत
१८ पूर्वो

१९ जय
२० प्रस्तुत
२१ प्रस्तुत
२२ श्रय
२३ जय
२४ ज०च० ९
२५ ग्न
२६ ज०च०६
२७ श्रय
२८ प्रस्तुत
२९ ज च ९
३ मथन
३१ पूर्वो
३२ मथन
३ जय
३४ प्रस्तुत
३५ ग्त
३६ पूर्वो
३७ जय
८ जय

३९ ज०क० ६
४० सोच
४१ वाम
४२ त्याग
४३ ज०च० २
४४ प्रस्तुत
४५ ज०च० १
४६ जं च० ९

राज्य नीति

४७ जय
४८ जय
४९ वाम
५० जय
५१ जय
५२ साच
५३ प्रस्तुत
५४ प्रस्तुत
५५ जय

२ ५ कल्याणी	२७५ व्यतात	३०८ परस
२४६ सोच	७६ पूर्वो	३ ९ ज०क २
२४७ साच	२७७ इत	३१० थय
२४८ सोच	२७८ जय	३११ प्रस्तुत
२४९ साच	२७९ प्रस्तुत	३१२ परस
२५० व्यतीत	२८० ज क ८	३१३ जय
२५१ सोच	२८१ सुनीता	१४ थय
२५२ साच	२८२ प्रस्तुत	३१५ परस
२५३ सोच	२८३ त्याग	३१६ मथन
२५४ व्यतील	२८४ मथन	३१७ विवत
२५५ सोच	२८५ मथन	३१८ विवत
२५६ सुनीता	२८६ मथन	३१९ थय
२५७ जं क० १	२८७ सुमन्ना	३२० काम
२५८ इत	२८८ काम	३२१ थय
२५९ ज क० १	२८९ थय	३२२ जय
२६० ज०क १	२९० थय	३२३ थय
२६१ न्त	२९१ य व	३२४ ज०क० १
२६२ इत	२९२ काम	३ ५ ज क० १
२६३ ज क० ६	२९३ पूर्वो	३२६ कल्याणी
२६४ ज०क० ६	२९४ व्यतीत	३२७ जय
२६५ पूर्वो	२९५ पूर्वो	३२८ सुनीता
६६ प्रस्तुन	२९६ परम	३२९ जय
२६७ पूर्वो	२९७ प्रस्तुन	३३० ज क० ४
२६८ प्रस्तुन	२९८ साच	३३१ त्याग
२६९ थय	२९९ परम	३३२ जय
२७० सुनीता	३०० प स	३३३ जं०क २
२७१ मथन	३०१ सोच	३३४ ज क० १
२७२ इत	०२ साच	३ ५ य व
२७३ प्रस्तुन	३०३ प्रस्तुन	३३६ पूर्वो
	३०४ प्रस्तुन	३३७ पूर्वो
व्यक्तित्व समाज	३ ५ थय	३३८ जय
	३०६ थय	३३९ मथन
२७४ प्रस्तुत	३०७ थय	३४० ज०क० १

४३४ मुनीना
४३५ ज०क० १
४३६ विवत
४३७ मुनीना
४३८ जै क० ७
४३९ प्रस्तुत
४४० ज०क० २
४४१ ज०क० ४
४४२ ज क० ४
४४३ ज क० १

४४४ मोष
४४५ पूर्वो
४४६ पूर्वो
४४७ ञेय
४४८ पूर्वो
४४९ थेय
४५० प्रस्तुत
४५१ व्यतीत
४५२ प्रस्तुत
४५३ सुखदा

४५४ व्यतीत
४५५ काम
४५६ य वे
४५७ मोच
४५८ य०वे
४५९ ज क० ६
४६० ज०क० १
४६१ मथन
४६२ सुखदा
४६३ मथन



इन/इनसान (निबंध)
कल्याणी/कल्याणी (उपन्यास)
काम०/काम प्रेम परिवार (प्रश्नोत्तर)
जय०/जयवर्धन (उपन्यास)
जै० क० १/जैनेन्द्र की कहानियाँ

प्रथम भाग

जै० क० २/	द्वितीय भाग
जै० क० ३/	तृतीय भाग
जै० क० ४/	चतुर्थ भाग
जै० क० ५	पाँचवा भाग
जै० क० ६/	छठा भाग
जै० क० ७/	सातवां भाग
जै० क० ८/	आठवां भाग
जै० क० ९/	नवां भाग

त्याग/त्याग पत्र (उपन्यास)
परख/परख (उपन्यास)
पूर्वो/पूर्वोदय (निबंध)
प्रस्तुत/प्रस्तुत प्रश्न (प्रश्नोत्तर)
मंथन/मंथन (निबंध)
मै० वे/मैं और वे (निबंध)
विवर्त/विवर्त (उपन्यास)
व्यतीत/व्यतीत (उपन्यास)

४३४ मुनीना
४३५ जं क० १
४३६ विमत
४३७ मुनीना
४३८ जं क० ७
४३९ मस्तन
४४० ज क० २
४४१ जै०क० ८
४४२ ज०क० ४
४४३ ज०क० १
४४४ मोच
४४५ पूर्वो
४४६ पूर्वो
४४७ थेय
४४८ पूर्वो
४४९ थेय
४५० प्रस्तुत
४५१ व्यतीत
४५२ प्रस्तुत
४५३ मुखदा
४५४ व्यतीत
४५५ थाम
४५६ थे चे
४५७ सोच
४५८ थे०चे
४५९ जै०क० ६
४६० ज०क० १
४६१ मंथन
४६२ गुखदा
४६३ मथन

■ ■ ।

इत/इतस्तत (निबन्ध)
कल्याणी/कल्याणी (उपन्यास)
काम०/काम, प्रेम परिवार (प्रश्नोत्तर)
जय०/जयवर्धन (उपन्यास)
जै० क० १/जैनेन्द्र की कहानियाँ प्रथम भाग
जै० क० २/ द्वितीय भाग
जै० क० ३/ तृतीय भाग
जै० क० ४/ चतुर्थ भाग
जै० क० ५/ पाँचवाँ भाग
जै० क० ६/ छठा भाग
जै० क० ७/ सातवाँ भाग
जै० क० ८/ आठवाँ भाग
जै० क० ९/ नवाँ भाग
त्याग/त्याग पत्र (उपन्यास)
परख/परख (उपन्यास)
पूर्वो/पूर्वोदय (निबन्ध)
प्रस्तुत/प्रस्तुत प्रश्न (प्रश्नोत्तर)
मंथन/मंथन (निबन्ध)
ये और वे/ये और वे (निबन्ध)
विवर्त/विवर्त (उपन्यास)
व्यतीत/व्यतीत (उपन्यास)

श्रेय/साहित्य का श्रेय और प्रेय (निबंध)
सुखदा/सुखदा (उपन्यास)
सुनीता/सुनीता (उपन्यास)
सोच/सोच विचार (निबंध)